समान नागरिक संहिता पर विधि आयोग की नकारात्मकता

- अनूप बरनवाल

बनाम

सत्यमेव जयते

भारतीय विधि आयोग

सौजन्य से

मिशन् अनुच्छेद ४४ : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून

द्वारा

लोक सर्वोदय फाउण्डेशन

अनुच्छेद 370 की समस्या केवल कश्मीर को बचाने की समस्या थी, किन्तु अनुच्छेद 44 की समस्या पूरे देश को बचाने की समस्या है।

महोदय,

अभियान 'मिशन अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून' ने हमेशा समान नागरिक संहिता के पक्ष में आवाज उठाता रहा है। इसी क्रम में 21वें विधि आयोग की समान नागरिक संहिता के खिलाफ दिए गए संस्तुति को लेकर यह पुस्तिका 2019 में प्रकाशित किया गया। यह पुस्तिका अब पुस्तक 'समान नागरिक संहिता : चुनौतियां और समाधान' का हिस्सा है, जो लोकभारती प्रकाशन द्वारा प्रकाशित है। इसलिए इस पुस्तिका को जनजागरण के उद्देश्य से पुस्तक 'समान नागरिक संहिता : चुनौतियां और समाधान' से साभार प्रकाशित किया जा रहा है।

मिशन अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून द्वारा किए गए लगातार प्रयास के बाद अब 22वें विधि आयोग ने पुन: समान नागरिक संहिता पर विचार करने की पहल किया है और देश के लोगों से सुझाव मांगे है।

अनुच्छेद 370 की समस्या केवल कश्मीर को बचाने की समस्या थी, किन्तु अनुच्छेद 44 के अनुक्रम में समान नागरिक संहिता न लागू होने की समस्या पूरे देश को बचाने की समस्या है। इसलिए एक भारतीय होने के नाते इस अभियान में योगदान करना देशहित में आवश्यक है। मिशन द्वारा एक व्यापक प्रत्यावेदन विधि आयोग के नाम तैयार किया जा रहा है। यदि आप भी इसका हिस्सा बनना चाहते है, तो अपनी सहमति अवश्य लिखकर भेजें।

- अनूप देशबन्धु

सौजन्य से

मिशन अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून

द्वारा

राष्ट्रीय स्वराज परिषद्

www.rashtriyaswaraj.org

© 2018 अनूप बरनवाल

सम्पर्क -

वेबसाइट - www.rashtriyaswaraj.org
ई.मेल - rsp.bharat2015@gmail.com
व्हाट्स अप/मोबाइल नं. - 9453011130
फेसबुक पेज -
https://facebook.com/ **राष्ट्रीय स्वराज परिषद** Rashtriya Swaraj Parishad;
https://facebook.com/Mission Article 44 : One Nation One Civil Law - ICC

साभार – पुस्तक 'समान नागरिक संहिता : चुनौतियाँ और समाधान (लोकभारती प्रकाशन द्वारा प्रकाशित, वर्ष 2019)

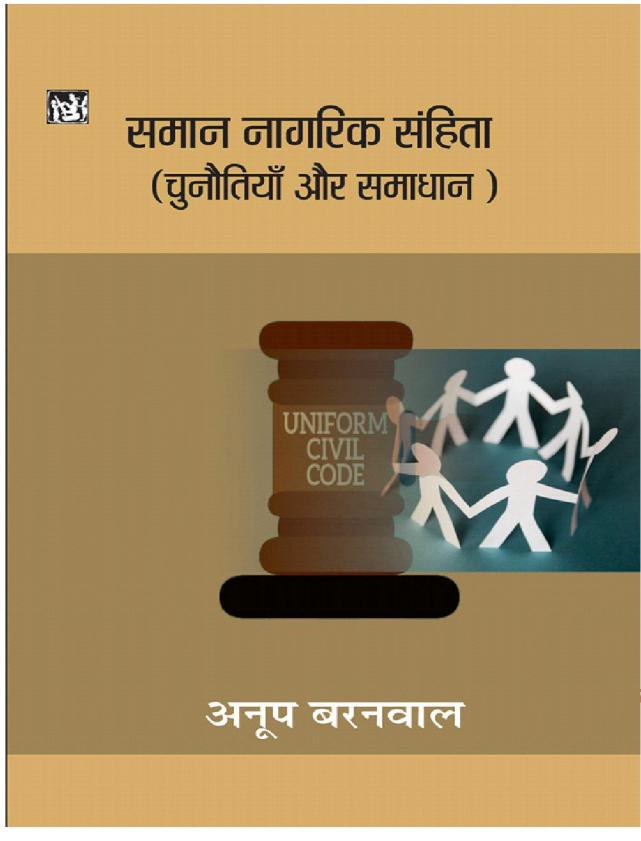

विषय-सूची

लोकार्पण के अवसर पर श्री केशरी नाथ त्रिपाठी का सम्बोधन 5

प्राक्कथन – श्री राम नाइक, पूर्व राज्यपाल 8

भूमिका . . . 9

1. सर्वसहमति पर संस्थागत शुचिता के खिलाफ निष्कर्ष . 12
2. संविधान-सभा के अस्तित्व को असंयमित चुनौती . 14
3. नीति-निदेशक सिद्धान्त के बारे में गलतफहमी . . 16
4. सुप्रीम कोर्ट के निर्णय पर अनुचित टिप्पणी . . 18
5. धार्मिक आजादी और समानता के अधिकार को लेकर ठहराव 21
6. समुदाय के अन्दर समानता को लेकर अनावश्यक अभ्यास. 24
7. व्यक्तिगत कानून की स्थिति को लेकर सन्देह . 28
8. मुस्लिम कानून के संहिताकरण को लेकर दुविधा . 31
9. हिन्दू अविभाजित परिवार पर अनुचित हमला . 34
10. संविधान की छठी अनुसूची पर गैरजिम्मेदाराना कार्य . 37

परिशिष्ट 1 - Representation before the Hon'ble Prime Minister to set aside the Report of the Law Commission dated 31.08.2018 . 45

परिशिष्ट 2 - Supreme Court's views on Law Commission 47

परिशिष्ट 3 -

अनुच्छेद 44 के बारे में संविधान-निर्माताओं के विचार . 49

अनुच्छेद 44 के बारे में सुप्रीम कोर्ट के विचार . 50

अनुच्छेद 44 के बारे में विद्वानों के विचार . 51

परिशिष्ट 4 - समान नागरिक संहिता बनने से होने वाले प्रमुख सुधार एवं लाभ . 53

परिशिष्ट 5 - 'मिशन् अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून' द्वारा किये जा रहे प्रयास . 55

परिशिष्ट 6 - मौलाना मदनी जी से 'समान नागरिक संहिता' पर पूछे गए 13 सवाल 58

इस पुस्तिका के लोकार्पण के अवसर पर
श्री केशरी नाथ त्रिपाठी, पूर्व राज्यपाल का सम्बोधन

सम्मानित वरिष्ठ न्यायमूर्ति शशिकान्त गुप्त जी, वरिष्ठ न्यायमूर्ति आर.एस. मौर्य जी, इलाहाबाद हाईकोर्ट बार के अध्यक्ष श्री राकेश पाण्डेय जी, बार काउन्सिल के अध्यक्ष श्री हरिशंकर सिंह जी, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री धर्मपाल सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार जी, सहायक सॉलिसीटर जनरल श्री ज्ञान प्रकाश जी एवं सभा में उपस्थित सभी अधिवक्ता बन्धुओं।

पिछले कई दशकों से देश में इस महत्त्वपूर्ण विषय पर चर्चा हो रही है कि समान नागरिक संहिता देश में लागू किया जाय अथवा नहीं। कुछ कहने के पहले मैं श्री अनूप बरनवाल जी को बधाई देना चाहता हूँ जिनकी पुस्तक का आज यहाँ लोकार्पण हुआ है। इन्होंने बहुत गम्भीरतापूर्वक इस विषय पर छानबीन करके संक्षेप में विभिन्न लेखों के माध्यम से विचार व्यक्त किया है। यह एक प्रकार से एक कुंजी है, जिसके आधार पर हम समान नागरिक संहिता के पक्ष में तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं। वह हमारे बधाई के पात्र हैं।

समान नागरिक संहिता के लिए जब कहीं चर्चा होती है, तो संविधान के अनुच्छेद ४४ का उल्लेख होता है। संविधान कोई निरर्थक दस्तावेज नहीं है। हम सब अधिवक्ता हैं और अधिवक्ता के रूप में जानते हैं कि एक सिद्धान्त है कि किसी भी विधायन में कोई भी शब्द निरर्थक नहीं माना जाता है। एक-से-एक मूर्धन्य विद्वान, जिन्होंने संविधान का निर्माण किया; एक-एक अनुच्छेद पर विस्तारपूर्वक चर्चा करने के बाद संविधान में इन्हें शामिल किया। तो यह निर्देश, जो अनुच्छेद ४४ में है कि देश में समान नागरिक संहिता लागू करने का प्रयास किया जायेगा, यह निर्देश निरर्थक नहीं है। इसके पीछे एक सशक्त राष्ट्र निर्माण की भावना है। इस राष्ट्र में, जहाँ सब बराबर हैं, समानता का अधिकार आपको संविधान से मिला हुआ है। यहाँ सब बराबर हैं, कोई भेदभाव नहीं है। लेकिन कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी कारणों से, जिसका बहुत विस्तारपूर्वक उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है, समान नागरिक संहिता का विरोध होता चला आ रहा है। लोग उसे धर्म से जोड़ देते हैं।

मैं दो-तीन उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। हम सब जानते हैं कि जमीदारी उन्मूलन अधिनियम है, उसमें भी सम्पत्ति के उत्तराधिकार की बात कही गयी है। उसमें तो कहीं, हिन्दू-मुस्लिम का अन्तर नहीं है। जिस प्रकार हिन्दू की भूमिधरी

संचालित होगी, उसी तरह मुस्लिम की भी होगी। यह धर्मनिरपेक्ष कानून है। सम्पत्ति का कानून सदैव से धर्मनिरपेक्ष माना गया है और धर्म से हटकर माना गया है। इसलिए अगर सम्पत्ति के उत्तराधिकार के बारे में कोई बात कहते हैं कि सारे देश के अन्दर उत्तराधिकार का कानून एक लागू होना चाहिए, तो उसका धर्म से कोई सम्बन्ध कहीं किसी प्रकार से नहीं है। इसी प्रकार भारतीय दण्ड संहिता है, संविदा कानून है, ये सारे के सारे धर्मनिरपेक्ष हैं। यदि धर्मनिरपेक्ष है, तो इसमें धर्म के आधार पर कोई अन्तर नहीं होता है कि कोई आदमी एक धर्म विशेष का है तो उसका अपराध क्षम्य है और दूसरे धर्म का क्षम्य नहीं है या उसके जाँच की प्रक्रिया दूसरी होगी। ये सारे के सारे देश की अखण्डता और एकता को सुनिश्चित करने के लिए हैं। देश में कानून की समानता हो, इस बात को सुनिश्चित करने के लिए हैं।

लेकिन यहाँ कुछ बात दूसरी है। यहाँ धर्म को वैवाहिक सम्बन्धों से जोड़ दिया गया है। मुस्लिम कानून में विवाह एक संविदा कार्य है। संविदा कार्य क्या है? संविदा कार्य धर्मनिरपेक्ष है या नहीं है? तो अलग-अलग चीजों की व्याख्या लोगों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से, अपने-अपने थोड़े से राजनीतिक हितों के लिए करना प्रारम्भ कर दिया और इसलिए समान नागरिक संहिता का विरोध होता चला गया। न्यायमूर्ति शशिकान्त गुप्ता जी ने अभी पण्डित जवाहरलाल नेहरू के भाषण का उल्लेख किया है। उस समय भी यह महसूस हो रहा था। जिस तरह नेहरू ने १९५४ में अपना वक्तव्य दिया कि हाँ, इस देश में समान नागरिक संहिता की आवश्यकता है, किन्तु अभी नहीं। परन्तु वो 'अभी नहीं' वाला शब्द जरा समझ में नहीं आया है कि कब तक 'अभी नहीं'? अभी नहीं कब तक चलेगा। संविधान लागू हुए ७० साल बीत गया और अभी हम संविधान के इस एक निर्देश का पालन नहीं कर पाये। यह ठीक है कि नीति निदेशक तत्त्व राज्य की नीति के विषय हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम नीति निदेशक तत्त्वों, जिसका निर्धारण मूर्धन्य विद्वानों ने किया है, हम उसका अनुपालन न करें।

तो इस प्रकार से अगर हम देखेंगे, तो धर्म और उत्तराधिकार, ये सारी चीजे अलग हैं, विवाह का कानून भी धर्मनिरपेक्ष कानून है। गोद लेना, उत्तराधिकार का कानून, हम अपने सम्पत्ति का वसीयत किस प्रकार से करें, कैसे करें, उस पर कौन से कानून हो, एक जाति या एक सम्प्रदाय पर एक प्रकार का, दूसरी जाति या दूसरे सम्प्रदाय के लिए दूसरे प्रकार का कानून नहीं होना चाहिए।

देश की एकता एवं अखण्डता और राष्ट्र के नागरिकों के मध्य समानता हमारा

लक्ष्य है। इसीलिए हमने उद्देश्यिका की सारी बातों को सम्मिलित करते हुए कहा है कि हमें समानता और भाईचारा चाहिए। किन्तु जब हम अलगाव की बात करेंगे, तो फिर भाईचारे की बात कहाँ से लायेंगे। हम संविधान की प्रस्तावना को नकार देंगे, तो ये सारे जो संविधान के वृहद लक्ष्य है, को कैसे प्राप्त करेंगे? इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए समान नागरिक संहिता आवश्यक है। इस पर चर्चा कई बार हुई। सुप्रीम कोर्ट ने कई निर्णयों में उसके बारे में अपना निर्देश भी दिया और यह अपेक्षा की है कि सरकार इस सम्बन्ध में कानून बनाये और हमें विश्वास है कि अभी हाल में सुप्रीम कोर्ट ने टिप्पणी किया है, उस पर सरकार अमल करेगी। इस पर कानून बनाने में कोई दिक्कत नहीं है। थोड़ी-सी राजनीतिक उथल-पुथल सब चीज में होती है। आपने तीन-तलाक को प्रतिबन्धित किया, थोड़ी उथल-पुथल हुई। उसके बाद कानून बन गया और अब सभी धीरे-धीरे स्वीकार कर रहे हैं। इस प्रकार समान नागरिक संहिता लागू होने पर शुरू में शोरगुल होंगे, लेकिन बाद में धीरे-धीरे समाज इसे स्वीकार करेगा। क्योंकि इसके जो लाभ हैं, वह व्यापक स्तर के लाभ हैं। और अलग-अलग कानून होने से जो नुकसान है, वह दूसरे प्रकार का नुकसान है। ये जिनके हित में बनाये गये हैं, उन्हीं के लिए नुकसानदेह है। तो मैं समझता हूँ कि आज इस देश की आवश्यकता है। 'राष्ट्र प्रथम' का लक्ष्य यदि हमें पूरा करना है, तो देश की आवश्यकता है कि समान नागरिक संहिता बनायें और इसके लिए प्रयास करें।

२६ सितम्बर, २०१९

- उक्त सम्बोधन को संस्था के निम्न वेबसाइट पर सुना जा सकता है।

वेबसाइट - www.rashtriyaswaraj.org

राम नाईक
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

राज भवन
लखनऊ - 226027

प्राक्कथन

'भारत का संविधान' के भाग- 4 में राज्य के मार्ग दर्शन के लिए नीति निर्देशक तत्त्वों की व्यवस्था की गयी है। संविधान का अनुच्छेद- 44 राज्य को भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करने हेतु निर्देशित करता है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भी मो० अहमद खान बनाम शाह बानो बेगम (1985) 2 एससीसी 556 के निर्णय में एक समान सिविल संहिता की आवश्यकता पर बल दिया गया है। समान सिविल संहिता संबंधी कानून विवाह, सम्पत्ति, विरासत, तलाक, उत्तराधिकार एवं अन्य पारिवारिक मामलों में धर्म के आधार पर उपलब्ध भिन्नताओं को दूर करने में सहायक होगा। विश्व के अधिकतर आधुनिक देशों में ऐसे कानून लागू किये गये हैं। अत: समान सिविल संहिता भारतीय समाज की सांस्कृतिक एवं वैधानिक आवश्यकता है जिसके संबंध में लेखक द्वारा रचित पुस्तक 'भारतीय सिविल संहिता के सिद्धान्त : अनुच्छेद 44 के क्रियान्वयन की दिशा में' के माध्यम से किया गया प्रयास सराहनीय है।

लेखक द्वारा अपनी पुस्तक में समान सिविल संहिता के संबंध में भारत में ब्रिटिश शासन के समय की वैधानिक स्थिति एवं संविधान सभा में सिविल संहिता के सम्बन्ध में किये गये विचार सहित भारत के संविधानोत्तर शासन में समान सिविल संहिता की स्थिति का मूल्यांकन किया गया है। यथास्थान माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत न्यायिक निर्णयों का उल्लेख करते हुए समान सिविल संहिता के वैश्विक दृष्टिकोण का भी उल्लेख किया गया है। समान सिविल संहिता से संबंधित अड़चनों का उल्लेख करते हुए लेखक द्वारा विभिन्न महत्त्वपूर्ण विधिक पहलुओं यथा— न्यास, वक्फ, विवाह, विवाह-विच्छेद, जनकता, दत्तक ग्रहण, अवयस्कता, संरक्षकत्व, भरण-पोषण, उत्तराधिकार, वसीयत व वसीयती अधिकार, बँटवारा एवं पारिवारिक समझौता सहित बौद्धिक सम्पदा अधिकार से संबंधित सारगर्भित एवं विवेचनापूर्ण प्रस्तुतीकरण किया गया है जो संबंधित विषय के पाठकों व शोधकर्ताओं के लिए उपयुक्त सिद्ध होगा।

श्री अनूप बरनवाल द्वारा इस पुस्तक के माध्यम से किया गया प्रयास सराहनीय है जिसके लिए मैं उन्हें हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ देता हूँ।

दिनांक : 21 अप्रैल, 2017

राम नाईक
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

भूमिका

17 जून, 2016 को नरेन्द्र मोदी सरकार द्वारा समान नागरिक संहिता के सम्बन्ध में विधि आयोग से राय माँगा गया। आजाद भारत के इतिहास में पहली बार समान नागरिक संहिता के लिए किसी सरकार द्वारा कोई पहल किया गया। यद्यपि केन्द्र सरकार से यह अपेक्षा थी कि वह समान नागरिक संहिता पर राय माँगने के बजाय इसका मसौदा तैयार करने के लिए पहल करेगा व इसके लिए अलग से एक व्यापक स्वरूप वाले 'समान नागरिक संहिता मसौदा समिति' का गठन करेगा और यदि ऐसा नहीं कर पा रहा है तो कम-से-कम विधि आयोग से संहिता का मसौदा तैयार करने के लिए कहेगा। अनुच्छेद 44 का संविधान का भाग हो जाने के बाद विषय यह नहीं है कि समान नागरिक संहिता बनना चाहिए या नहीं, बल्कि विषय यह है कि समान नागरिक संहिता किस तरह बनाया जाना चाहिए? इसका सबसे मजबूत पक्ष यही होता कि एक अलग मसौदा समिति का गठन कर समान नागरिक संहिता का मसौदा तैयार करवाया जाता, जिसके लिए 'मिशन अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून' द्वारा माँग भी किया गया है। किन्तु विधि आयोग से समान नागरिक संहिता पर राय माँगना केन्द्र सरकार के आधी-अधूरी इच्छाशक्ति को दर्शाता है। इसके बावजूद मोदी सरकार द्वारा किया गया पहल ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है।

मोदी सरकार की पहल के अनुक्रम में विधि आयोग द्वारा लोगों से सुझाव माँगा गया, जिसके बाद देशभर से विधि आयोग को लगभग 75 हजार सुझाव प्राप्त हुए। करीब दो वर्ष की अवधि के बाद 31 अगस्त, 2018 को न्यायमूर्ति डॉ. बी. एस. चौहान की अध्यक्षता में विधि आयोग द्वारा समान नागरिक संहिता पर रिपोर्ट देने के बजाय धर्म-आधारित अलग-अलग पारिवारिक कानूनों में सुधार के लिए एक परामर्श-पत्र प्रस्तुत किया गया। 182 पृष्ठ में तैयार किए गए विधि आयोग के इस परामर्श-पत्र में कुल पाँच अध्याय है। पहला अध्याय 'परिचय', दूसरा अध्याय 'विवाह और विवाह-विच्छेद', तीसरा अध्याय 'संरक्षकत्व', चौथा अध्याय 'गोद एवं भरण-पोषण' और पाँचवाँ अध्याय 'उत्तराधिकार' से सम्बन्धित है।

16 पृष्ठ में लिखे गये 39 पैरा वाले पहले अध्याय 'परिचय' में विधि आयोग द्वारा यह चर्चा किया गया है कि देश के लिए यूनिफॉर्म सिविल संहिता यानी समान नागरिक संहिता का निर्माण करना आवश्यक है या नहीं। कई पहलुओं पर विचार करने के उपरान्त विधि आयोग द्वारा अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 1.15 में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इस समय समान नागरिक सहिता न तो आवश्यक है और न ही वांछनीय है। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए विधि आयोग द्वारा इस अध्याय में उन सभी बातों को एकत्रित करने का प्रयास किया गया है, जो समान नागरिक संहिता के खिलाफ हो सकता हैं।

विधि आयोग द्वारा प्रस्तुत उक्त परामर्श-पत्र लोक सर्वोदय फाउण्डेशन द्वारा अनुच्छेद 44 का क्रियान्वयन करने और इसका लक्ष्य— समान नागरिक संहिता 'भारतीय सिविल संहिता'— हासिल करने के लिए चलाये जा रहे अभियान 'मिशन अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून' के समक्ष एक अवरोध की तरह है। इसलिए इस अवरोध का निराकरण निकालना मिशन की जिम्मेदारी है। यदि विधि आयोग द्वारा परामर्श-पत्र में समान नागरिक संहिता के खिलाफ दिये गये नकारात्मक बातों की वास्तविकता को समझ लें और इसका निराकरण निकाल लें, तो समान नागरिक संहिता के लिए रास्ता और आसान हो जायेगा। इस दृष्टिकोण से परामर्श-पत्र के पहले अध्याय में विधि आयोग द्वारा दिये गये तर्कों एवं निकाले गये निष्कर्षों का समीक्षात्मक अध्ययन इस शोध-पुस्तक के माध्यम से करने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान समय में समान नागरिक संहिता के निर्माण की आवश्यकता नहीं है, इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए विधि आयोग द्वारा अपने परामर्श-पत्र दिनांक 31 अगस्त, 2018 के पहले अध्याय में मुख्यत: निम्न सात तर्क दिये गये हैं—

1. समान नागरिक संहिता विषय पर सर्वसहमति का अभाव है।;
2. संविधान-सभा बहस से यह दिखता है कि संविधान-सभा में इस बात को लेकर सहमति नहीं थी कि सम्भावित समान नागरिक संहिता क्या होगा।;
3. संविधान में समान नागरिक संहिता के विषय को मूल अधिकार के रूप में रखने के बजाय नीति-निदेशक सिद्धान्त के रूप में रखा गया है।;
4. सुप्रीम कोर्ट के शाहबानो मामले के निर्णय में उस इतिहास का ध्यान नहीं रखा गया है जो देश में पारिवारिक कानूनों में सुधार के लिए किये गये प्रयासों को लेकर हुए हैं।;
5. धार्मिक आजादी एवं धर्म-प्रचार करने के अधिकार को कुछ अपवाद को

छोड़कर धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र में जहाँ मजबूती से सुरक्षित किया जाना चाहिए, वहीं समानता के अधिकार को पूर्ण अधिकार की तरह नहीं लिया जा सकता है।;

6. आजादी के बाद व्यक्तिगत कानूनों को मजबूती मिली है।;
7. भारत के संविधान के छठी अनुसूची के अन्तर्गत कुछ राज्यों को सुरक्षा प्रदान किया गया है। सांस्कृतिक विविधता के साथ इस सीमा तक समझौता नहीं किया जा सकता है कि एकरूपता के प्रति हमारा आग्रह स्वयं देश की क्षेत्रीय अखण्डता के लिए खतरे का कारण बन जाय।

विधि आयोग द्वारा उपर्युक्त बिन्दुओं पर व्यक्त किये गये विचारों का तत्त्वात्मक अध्ययन और इन विचारों का समान नागरिक संहिता के सन्दर्भ में प्रासंगिकता का समालोचनात्मक शोध इस पुस्तक के माध्यम से किया जा रहा है।

1.

सर्वसहमति पर संस्थागत शुचिता के खिलाफ निष्कर्ष

परामर्श–पत्र के शुरुआती पैरा सं. 1.3 में विधि आयोग द्वारा एक वाक्य में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि 'व्यक्तिगत कानून भारतीय संविधान के अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत कानून है या नहीं या यदि है, तो क्या वे अनुच्छेद 25–28 के अन्तर्गत सुरक्षित हैं या नहीं, यह विषय कई मामलों में विवादित रहा है, जिसमें नारसा अप्पु माली का मामला सबसे अधिक उल्लेखनीय है।' विधि आयोग तुरन्त आगे कहता है कि समान नागरिक संहिता पर सर्वसहमति के अभाव में आयोग सोचता है कि व्यक्तिगत कानूनों की विविधता को सुरक्षित करना सबसे उपयुक्त है, किन्तु उसी समय यह भी सुनिश्चित करे कि व्यक्तिगत कानून संविधान के अन्तर्गत गारण्टी किये गये मूल अधिकार से असंगत न हो।'

बिना यह बताये कि सर्वसहमति के सम्बन्ध में कब और किस तरह का राष्ट्रीय स्तर पर सर्वेक्षण कराया गया था, डॉ. बी. एस. चौहान आयोग द्वारा समान नागरिक संहिता पर सर्वसहमति का अभाव होने की बात कहना और किसी तरह का निष्कर्ष निकालना गैरजिम्मेदाराना व्यवहार है। मात्र तीन पंक्तियों वाले एक वाक्य में एक मामले का हवाला देकर आप इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते कि समान नागरिक संहिता पर सर्वसहमति नहीं है। डॉ. चौहान आयोग सर्वसहमति पर इस तरह का निष्कर्ष देने के पूर्व यह समझने में विफल रहा है कि एक कानून को बनाने के लिए देश के सभी लोगों की सहमति का होना न तो संविधानत: आवश्यक होता है और न ही व्यवहारिक ही होता है। सर्वसहमति के ऐसे किसी तरीके को अपनाकर न तो कोई कानून बनाया जा सकता है और न ही बनाया जाता है। आवश्यक यह है कि कानून देशहित में हो और सर्वकल्याणकारी हो। बनने वाला कोई कानून देशहित में और सर्वकल्याणकारी है या नहीं, इस पर निर्णय लेने की जिम्मेदारी लोकतन्त्र के

अन्तर्गत चुनी गयी सरकार और संसद की होती है। किन्तु डॉ. चौहान की अध्यक्षता वाला विधि आयोग अपनी सीमाओं को भूल गया और संस्थागत शुचिता के खिलाफ जाकर उसने अपने ऊपर अनावश्यक भार ले लिया। इस तरह के अनावश्यक भार को अपने ऊपर लेने से विधि आयोग बच सकता था।

केन्द्र सरकार द्वारा समान नागरिक संहिता पर राय माँगे जाने के बाद डॉ. चौहान आयोग को इस विषय पर अनुसन्धान करने की आवश्यकता थी कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 के पवित्र प्रावधान को लागू करने की दिशा में समान नागरिक संहिता को कैसे इस तरह बनाया जाय कि अनुच्छेद 19 एवं 25 द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतन्त्रता के मूल अधिकार का उल्लंघन न हो सके; कैसे भारत में लागू धर्म-आधारित भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत कानूनों से धार्मिक क्रियाकलाप के तत्त्वों को, यदि कोई है, अलग किया जाय; कैसे इन व्यक्तिगत कानूनों में एक ही विषय पर स्वीकार किए गए अलग-अलग व्यवस्थाओं के मध्य सामंजस्य के बिन्दु को निकाला जाय; यदि सामंजस्य का बिन्दु नहीं निकल पा रहा है, तो वे कौन-से तरीके हैं, जिसको अपनाकर समान नागरिक संहिता के लिए किसी सर्वमान्य बिन्दु प्राप्त किया जाय, इत्यादि-इत्यादि। किन्तु दुर्भाग्य से दो वर्ष से अधिक की अवधि के बाद भी डॉ. चौहान आयोग इस दिशा में किसी तरह का कोई भी दायित्व निभाने में विफल रहा है।

समान नागरिक संहिता विषय पर 'मिशन आर्टिकल 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून' का प्रतिनिधिमण्डल 9 जनवरी, 2018 को विधि आयोग से मिला था। विधि आयोग के साथ हुई बैठक में अध्यक्ष न्यायमूर्ति डॉ. चौहान एवं अन्य सदस्यों का ध्यान उन इक्कीस मार्गदर्शी सिद्धान्तों की तरफ आकृष्ट कराया गया, जिनके आधार पर देश के लिए 'भारतीय सिविल संहिता' के स्वरूप में समान नागरिक संहिता बनाया जा सकता है। इस बैठक में डॉ. चौहान एवं उपस्थित सभी सदस्यों को समान नागरिक संहिता पर लिखी पुस्तक और इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रदान किया गया था। सभी माननीय सदस्यों द्वारा इन इक्कीस सिद्धान्तों को एक-एक करके पढ़ा गया और इन पर करीब दो घण्टे विस्तार से चर्चा किया गया। इसलिए भूलने या छूट जाने की बात सोचा ही नहीं जा सकता है। हमें पूरा विश्वास था कि डॉ. चौहान आयोग द्वारा इस पर अवश्य ही विचार किया जायेगा। किन्तु अपने परामर्श-पत्र में इन सिद्धान्तों पर विचार ही नहीं किया जाना सिद्ध करता है कि डॉ. चौहान आयोग की मन्शा समान नागरिक संहिता को लेकर निष्पक्ष एवं पाक-साफ नहीं रहा है।

2.

संविधान-सभा के अस्तित्व को असंयमित चुनौती

विधि आयोग के परामर्श-पत्र का सबसे नकारात्मक पक्ष संविधान-सभा के सन्दर्भ में की गयी टिप्पणी है। पैरा सं. 1.11 में डॉ. चौहान आयोग द्वारा संविधान-सभा के अस्तित्व को ही चुनौती देने का प्रयास किया गया है। वह भी हिन्दू कोड बिल के ऐसे सन्दर्भ को लेकर ऐसा किया गया है, जिसका संविधान-सभा से दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं था। संविधान-सभा का हिन्दू कोड बिल से न तो कोई सरोकार था और न ही संविधान-सभा के समक्ष यह कभी निर्णयात्मक चर्चा का विषय रहा है। किन्तु हिन्दू कोड बिल के बारे में एक ही पैरा में मात्र चार-छह लाइन लिखने के बाद डॉ. चौहान आयोग द्वारा यह लिखा गया है कि 'हिन्दू कोड के विविध प्रारूपों को कई बार दोहराया गया और प्रत्येक बार इसे कमजोर किया जाता रहा। यह तर्क दिया गया है कि संविधान-सभा का गठन चुने गये सदस्यों से नहीं, बल्कि चयनित सदस्यों द्वारा किया गया था, इसलिए यह जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व नहीं करता था।'

विधि आयोग के उपर्युक्त विचार में बाद वाली टिप्पणी कि 'इसलिए यह जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व नहीं करता था' में प्रयोग किये गये शब्द 'था' से यह भाव निकल रहा है कि यह विचार विधि अयोग का ही है। अन्यथा यदि यह तर्क के क्रम का भाग होता तो 'है' का प्रयोग किया जाता न कि 'था' का। डॉ. चौहान आयोग द्वारा संविधान-सभा के अस्तित्व के बारे में इस तरह का विचार व्यक्त करने की आवश्यकता क्यों हुई, यह किसी भी एक विवेकशील व्यक्ति के समझ के बाहर की बात है। विधि आयोग को ऐसी असंयमित स्थिति स्पष्ट करने के लिए आगे आना चाहिए।

विधि आयोग ने इसके पहले वाले दो पैरा यानी पैरा सं. 1.9 एवं 1.10 में अपना निष्कर्ष निकाला है कि 'संविधान-सभा के बहस से यह दिखता है कि संविधान-सभा में इस बात को लेकर सर्वसहमति नहीं थी कि सम्भावित समान नागरिक संहिता क्या होगा।'

वस्तुत: विधि आयोग यह समझना भूल गया कि संविधान-सभा को इस बिन्दु पर कि देश के लिए सम्भावित समान नागरिक संहिता का स्वरूप क्या होगा, कोई

कार्य करना ही नहीं था। उसे संविधान का निर्माण करना था; उसे देश के भावी शासन-व्यवस्था की संरचना करनी थी; उसे लोगों को मर्यादित मूल अधिकार के सुरक्षा की गारण्टी देनी थी और उसे भावी नीति-निर्माताओं के लिए उन नीति-निदेशक तत्त्वों का निर्धारण करना था, जो देशहित एवं लोक-कल्याण के लिए था। भावी नीति-निर्माताओं द्वारा समान नागरिक संहिता का निर्माण किया जाय, यह ऐसा ही एक नीति-निदेशक तत्त्व था। जहाँ तक सर्वसहमति की बात है, तो डॉ. चौहान आयोग द्वारा यदि संविधान-सभा में किये गये बहस को पूरी तरह और अच्छी तरह पढ़ लिया गया होता तो उसे यह बात पता होता कि संविधान-सभा ने अपने सभी विद्वान् सदस्यों के पक्ष या विपक्ष में दिये गये तर्कों पर विचार करने के उपरान्त अनुच्छेद 44 के प्रावधान को सर्वसहमति से पारित किया था।

पैरा सं. 1.9 में विधि आयोग द्वारा डॉ. अम्बेडकर के अनुच्छेद 44 पर बहस के दौरान दिये गये वक्तव्य के एक अंश का जिक्र किया गया है, जिसमें उन्होंने कहा था कि 'यह पूरी तरह सम्भव है कि भावी संसद शुरुआत करते समय यह प्रावधान बनाये कि संहिता उन लोगों पर लागू होगा जो इससे शासित होने की घोषणा करते हैं ताकि शुरू में कानून का लागू होना स्वयं की इच्छा पर निर्भर हो।' डॉ. अम्बेडकर द्वारा व्यक्त किया गया यह विचार समान नागरिक संहिता बनने के बाद इसके क्रियान्वयन को लेकर था। किन्तु दुर्भाग्य से डॉ. चौहान आयोग द्वारा इसे समान नागरिक संहिता के सन्दर्भ में नकारात्मकता के साथ लिया गया।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा समान नागरिक संहिता और व्यक्तिगत कानून के सन्दर्भ में कई महत्त्वपूर्ण बाते कही गयी हैं। अनुच्छेद 44 पर बहस के दौरान डॉ. अम्बेडकर द्वारा तर्क दिया गया कि मानवीय सम्बन्ध से जुड़े लगभग सभी क्षेत्रों के सन्दर्भ में इस देश में समान कानून संहिताएँ हैं। हमारे पास 'दण्ड संहिता' और 'आपराधिक प्रक्रिया संहिता' के रूप में एक समान और पूर्ण आपराधिक संहिता है जो पूरे देश में लागू होता है। हमारे पास 'सम्पत्ति अन्तरण कानून' है जो सम्पत्ति के सम्बन्ध में पूरे देश में लागू है। ... जिस क्षेत्र में यूनिफॉर्म सिविल कानून लागू नहीं होता है, वह विवाह और उत्तराधिकार का क्षेत्र है। यह एक छोटा-सा क्षेत्र है जिस पर हम समान कानून नहीं बना सके हैं और यह इच्छा है कि अनुच्छेद 35 को संविधान का भाग बनाकर बदलाव लाना चाहते हैं।' डॉ. अम्बेडकर ने आगे यह भी कहा कि 'इसलिए यह अनिवार्य पाया गया कि एक ऐसे सिविल संहिता का विकास किया जाय, जो धर्म से निरपेक्ष रहकर सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू हो।'

व्यक्तिगत कानून के सन्दर्भ में अनुच्छेद 19 पर बहस के दौरान अपने जवाब

में 2 दिसम्बर, 1948 को संविधान-सभा के समक्ष डॉ. अम्बेडकर द्वारा तर्क दिया गया कि 'यदि हम व्यक्तिगत कानून को बचाते हैं तो मैं इस बारे में निश्चित हूँ कि सामाजिक मामलों को लेकर हम ठहराव की स्थिति में आ जायेंगे। मैं नहीं सोचता हूँ कि यह स्थिति स्वीकार करना सम्भव है।'

किन्तु दुर्भाग्य से डॉ. चौहान आयोग द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व डॉ. अम्बेडकर के उक्त विचारों को महत्त्व नहीं दिया गया और उनके वक्तव्य के एक अंश को आधार बनाकर यह निष्कर्ष निकाल दिया गया कि 'संविधान-सभा में इस बात को लेकर सर्वसहमति नहीं थी कि सम्भावित समान नागरिक संहिता क्या होगा।'

समान नागरिक संहिता जैसे संवेदनशील विषय पर विधि आयोग जैसी संस्था द्वारा इतना अगम्भीर तरीके से निष्कर्ष निकालना आश्चर्य की बात है। यदि संविधान-सभा के समक्ष मि. मोहम्मद इस्माइल साहिब, मि. नजरुद्दीन अहमद, मि. महबूब अली बेग साहिब बहादुर एवं बी. पोकर साहिब बहादुर द्वारा उठाये गये सवालों और इन सवालों पर श्री के. एम. मुन्शी, श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर, डॉ. अम्बेडकर द्वारा दिये गये जवाब (जिनका विस्तार से उल्लेख इस पुस्तक के पहले अध्याय में किया गया है) को सम्पूर्णता के साथ समझने का प्रयास किया गया होता, तो विधि आयोग इस तरह का गैर गम्भीर और अप्रमाणित निष्कर्ष निकालने और संविधान-सभा के अस्तित्व को असंयमित चुनौती देने से बच जाता।

3.

नीति-निदेशक सिद्धान्त के बारे में गलतफहमी

विधि आयोग द्वारा अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 1.10 के अन्तिम भाग में यह विचार दिया गया है कि 'ऐसे भी लोग थे जो यह धारणा रखते थे कि समान नागरिक संहिता धर्म की आजादी को खत्म करता है। कौन-से अपवाद आजादी के रूप में स्वीकार होने योग्य हैं और कौन-से अपवाद इस आजादी को खत्म करते हैं, इस अनिश्चितता के कारण संविधान-सभा द्वारा समान नागरिक संहिता के प्रावधान को मूल अधिकार के बजाय संविधान के अनुच्छेद 44 में नीति-निदेशक सिद्धान्त के अन्तर्गत रखा गया।' पैरा सं. 1.12 में भी डॉ. चौहान आयोग द्वारा यह विचार दिया गया है कि 'संविधान-सभा समान नागरिक संहिता को मूल अधिकार के बजाय नीति-

निदेशक सिद्धान्त के रूप में रखने के लिए सहमत हुआ।'

लगता है कि विधि आयोग यह मानकर चला है कि संविधान-सभा में इस बात को लेकर विवाद हुआ था कि समान नागरिक संहिता को मूल अधिकार के रूप में रखा जाय या नीति-निदेशक सिद्धान्त के रूप में और अन्ततः संविधान-सभा द्वारा यह तय किया गया कि इसे नीति-निदेशक सिद्धान्त के रूप में रखा जाना चाहिए। ऐसे स्वनिर्मित मान्यता को आधार बनाकर विधि आयोग द्वारा पैरा सं. 1.12 के अन्तर्गत उपर्युक्त निष्कर्ष निकाला गया है और यह सन्देश देने का प्रयास किया गया है कि समान नागरिक संहिता को मूल अधिकार के रूप में स्वीकार न किये जाने के कारण यह विषय महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया है।

वस्तुतः तथ्य यह है कि समान नागरिक संहिता के स्थान को लेकर कि इसे मूल अधिकार वाले भाग 3 में रखा जाय या नीति-निदेशक सिद्धान्त वाले भाग 4 में, संविधान-सभा के समक्ष न तो कोई प्रश्न उठा था और न ही कोई विवाद पैदा हुआ था। समान नागरिक संहिता को बनाने का विषय प्रत्यक्ष तौर पर किसी नागरिक के अधिकार से जुड़ा विषय कम और राज्य के दायित्व का विषय ज्यादा था। इसलिए इसे हर हाल में नीति-निदेशक सिद्धान्त के रूप में ही रखा जाना था। ऐसा करने मात्र से समान नागरिक संहिता का महत्त्व कम नहीं हो जाता है। किन्तु डॉ. चौहान आयोग द्वारा अपने परामर्श-पत्र में एक काल्पनिक बात को आधार बनाकर समान नागरिक संहिता के महत्त्व को कमतर आँकने का प्रयास किया गया है।

डॉ. चौहान आयोग द्वारा नीति निदेशक सिद्धान्तों के महत्त्व को समझे जाने की आवश्यकता थी। ये न केवल राज्य-संचालन की दृष्टि से, बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक समानता के लक्ष्य को हासिल करने की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण हैं। अनुच्छेद 38 पर संविधान-सभा में 19 नवम्बर, 1948 को हुए बहस के दौरान नीति निदेशक सिद्धान्त को आर्थिक लोकतन्त्र के लिए आधारभूत बताने के सन्दर्भ में डॉ. अम्बेडकर द्वारा जो बात कहा गया है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। डॉ. अम्बेडकर के शब्दों में — 'मेरे निर्णय में, निर्देशक सिद्धान्तों का बड़ा महत्त्व है। हमारा आदर्श आर्थिक लोकतन्त्र है, इसके लिए इनको रखा गया है। संविधान में प्रदत्त तरह-तरह के तन्त्रों के माध्यम से शासन की संसदीय प्रणाली स्थापित हो जाये, मात्र ऐसा ही हम नहीं चाहते। इसके भी निर्देशन के लिए कि हमारा आर्थिक आदर्श क्या होगा, हमारी सामाजिक व्यवस्था क्या होनी चाहिए, हमने जान-बूझकर संविधान में निर्देशक सिद्धान्तों को रखा है।'

समान नागरिक संहिता भी आर्थिक लोकतन्त्र एवं सामाजिक समानता, खासकर

लैंगिक समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने तथा राज-व्यवस्था एवं न्यायिक-प्रशासन का सुगम संचालन करने के सन्दर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस कारण समान नागरिक संहिता को नीति- निदेशक सिद्धान्त वाले भाग में रखना इसके महत्त्व को और बढ़ाता है न कि कम करता है। किन्तु डॉ. चौहान आयोग द्वारा समान नागरिक संहिता को मूल अधिकार वाले भाग में न रखे जाने को इस तरह दोहराया गया है जैसे कि इस कारण से यह बिल्कुल महत्त्वहीन हो गया हो। ऐसी काल्पनिक अवधारणा बनाने के पूर्व डॉ. चौहान आयोग न तो नीति-निदेशक सिद्धान्तों के महत्त्व को समझ पाया और न समान नागरिक संहिता के वास्तविक मन्शा को ही समझ पाया।

4.

सुप्रीम कोर्ट के निर्णय पर अनुचित टिप्पणी

शाहबानो बेगम मामले में सुप्रीम कोर्ट के पाँच न्यायाधीशों की संविधान-पीठ द्वारा समान नागरिक संहिता के बारे में निर्णय देते हुए कहा गया कि ''यह भी दु:ख का विषय है कि हमारे संविधान का अनुच्छेद 44 मृत अक्षर बनकर रह गया है। यह प्रावधानित करता है कि 'राज्य नागरिकों के लिए यूनिफॉर्म सिविल संहिता प्राप्त करने का प्रयास करेगा।' समान नागरिक संहिता को बनाने के लिए राज्य स्तर पर प्रयास किये जाने का कोई साक्ष्य नहीं है। लगता है कि ऐसा विश्वास कर लिया गया है कि यह मुस्लिम समुदाय के लिए है कि वह अपने व्यक्तिगत कानूनों में सुधार के लिए आगे बढ़ें। कॉमन सिविल संहिता विरोधाभासी विचारों वाले कानूनों के प्रति पृथक्करणीय भक्तिभाव को समाप्त कर राष्ट्रीय अखण्डता के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहयोग करेगा।...''

इसके पश्चात सुप्रीम कोर्ट द्वारा धर्म-आधारित अलग-अलग व्यक्तिगत कानूनों में विसंगतियों के कारण पैदा होकर समय-समय पर आने वाले कई मामलों में समान नागरिक संहिता की आवश्यकता को महसूस किया गया। सरला मुद्गल मामले में न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह द्वारा व्यक्त की गयी टिप्पणी अतिमहत्त्वपूर्ण है। न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह के अनुसार 'अनुच्छेद 44 इस अवधारणा पर आधारित है कि एक सभ्य समाज में धर्म और व्यक्तिगत कानून का कोई आवश्यक लगाव नहीं है। अनुच्छेद 25 धार्मिक आजादी की गारण्टी देता है जबकि अनुच्छेद 44 धर्म को सामाजिक सम्बन्धों और व्यक्तिगत कानूनों से पृथक् करने की बात करता है। विवाह

एवं उत्तराधिकार और ऐसे अन्य कई धर्म-निरपेक्ष मामलों को अनुच्छेद 25, 26 और 27 के अन्तर्गत प्रदान की गयी गारण्टी की परिधि में नहीं लाया जा सकता है।'

शाहबानो मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा व्यक्त किये गये उक्त विचार को पैरा सं. 1.12 में उद्धरित करने के तुरन्त पश्चात डॉ. चौहान आयोग द्वारा पैरा सं. 1.13 में टिप्पणी किया गया है कि 'परन्तु यह निर्णय (यानी शाहबानो मामले में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय) देश में पारिवारिक कानूनों में किये गये सुधारों के प्रयासों के इतिहास का ध्यान नहीं रखा है।' इसके आगे यह भी टिप्पणी कर दिया गया है कि 'इस स्तर पर कोई भी विश्वास के साथ यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि आयोग की पारिवारिक कानूनों के सुधार की दिशा में किया जा रहा यह पहल विधायी आदेश के बजाय सिविल संस्थाओं, शिक्षण-संस्थाओं और समाज के संवेदनशील वर्ग द्वारा प्रेरित है।'

सवाल पैदा होता है कि सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के सन्दर्भ में विधि आयोग द्वारा इस तरह की नकारात्मक टिप्पणी कैसे की जा सकती है? डॉ. चौहान आयोग किन पारिवारिक कानूनों में हुए सुधारों के इतिहास की बात कर रहा है, जो कि शाहबानो मामले के तथ्यों के सन्दर्भ में प्रासंगिक रहा हो और जिसे सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्णय दिये जाते समय ध्यान में नहीं रखा गया। यदि मान भी लिया जाय कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा ऐसी कुछ भूल कर भी दी गयी, तो भी इस कारण संविधान के अनुच्छेद 44 का महत्त्व कैसे समाप्त हो जाता है? विधि आयोग यह क्यों नहीं समझ पाया कि इस व्यवस्था, जिसका विधि आयोग भी एक अंग है, की अकर्मण्यता के कारण 1950 से लेकर 1984 तक मुस्लिम समाज में भरण-पोषण की स्थिति को लेकर असमंजस बना हुआ था। सुप्रीम कोर्ट द्वारा पहली बार इसका निराकरण निकालने का प्रयास शाहबानो बेगम मामले के माध्यम से किया गया। विधि आयोग यह कैसे भूल सकता है कि इस व्यवस्था की अकर्मण्यता के कारण ही मुस्लिम कानून में प्रचलित मौखिक तीन तलाक से भारत की मुस्लिम महिलाएँ अभिशप्त बनी रही हैं। 52 साल बाद अन्ततः सुप्रीम कोर्ट को शमीम आरा (2002) मामले में आगे आकर कहना पड़ा कि तलाक के लिए कोई-न-कोई तार्किक आधार का होना आवश्यक है। फिर भी विधि आयोग का ध्यान इस आवश्यक कानूनी सुधार की तरफ नहीं जा सका।

डॉ. चौहान आयोग द्वारा अपने परामर्श-पत्र के माध्यम से शमीम आरा के निर्णय को कानूनी जामा पहनाने की दिशा में प्रयास किया जा सकता था। ऐसा तो नहीं किया जा सका, किन्तु सुप्रीम कोर्ट के निर्णय पर अनावश्यक व निराधार टिप्पणी करने की जोखिम डॉ. चौहान आयोग ने ले लिया। इस आयोग द्वारा न केवल शाहबानो बेगम

के निर्णय पर निराधार टिप्पणी करने की जोखिम उठाया गया, बल्कि अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 2.82 में सुप्रीम कोर्ट के शामीम आरा के निर्णय को यह कहकर उपेक्षित कर दिया कि यह मात्र ओबिटर डिक्टा (इतरोक्ति) है, जिसमें तलाकशुदा पत्नी को भरण-पोषण के लिए खर्च देने का मामला विचाराधीन था। इस कारण यह निर्णय बाध्यकारी नहीं है। तीन तलाक का यह व्यवहार अगस्त, 2017 तक, जब तक कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा रद्द नहीं कर दिया गया, बना रहा।

मतलब साफ है कि परामर्श-पत्र बनाते समय डॉ. चौहान आयोग द्वारा अपने नीर-क्षीर विवेक का इस्तेमाल नहीं किया जा सका है। पहली बात यह कि विधि आयोग को यह क्षेत्राधिकार नहीं प्राप्त था कि वह सुप्रीम कोर्ट के निर्णय की इस तरह नकारात्मक व्याख्या कर तीन तलाक के सम्बन्ध में प्रतिपादित सिद्धान्त की उपेक्षा करे। इस मामले में मुस्लिम पति द्वारा पत्नी को भरण-पोषण देने से इस आधार पर मना कर दिया गया था क्योंकि पति के अनुसार उसने अपनी पत्नी को तीन तलाक दिया है। इस कारण से तलाक की वैधानिकता से भरण-पोषण का दायित्व प्रभावित होने वाला था। इसलिए यह कहना उचित नहीं कि शमीम आरा मामले में तीन तलाक का विषय मात्र ओबिटर डिक्टा (इतरोक्ति) था। इसके बावजूद भी यदि यह मान लिया जाय कि शमीम आरा का निर्णय तीन तलाक के सम्बन्ध में ओबिटर डिक्टा होने के कारण बाध्यकारी नहीं हो सकता है या कुछ पल के लिए यह भी मान लिया जाय कि ऐसे किसी निर्णय का अस्तित्व ही नहीं है, तो क्या विधि आयोग से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वह इस विषय पर अपने विवेक का प्रयोग करे और यह तय करे कि मौखिक तलाक के लिए तार्किक आधार होना चाहिए या नहीं होना चाहिए। भले ही तलाक के लिए तार्किक आधार होने की बाध्यता बताने वाला शमीम आरा का निर्णय ओबिटर डिक्टा हो, फिर भी विधि आयोग को अपने निष्पक्ष विवेक एवं कौशल का प्रयोग करना ही चाहिए था। किन्तु दुर्भाग्य से अपने पूरे परामर्श-पत्र में डॉ. चौहान आयोग ऐसा करने में विफल रहा और सिविल संस्थाओं, शिक्षण-संस्थाओं और समाज के संवेदनशील वर्ग का शरण लेने लगा। शायद ही कोई सिविल संस्था या संवेदनशील वर्ग आयोग के समक्ष आकर यह कहा हो कि आप शमीम आरा मामले को उपेक्षित करते हुए पारिवारिक कानून में सुधार करने के लिए या सुप्रीम कोर्ट के निर्णय पर गैर-जिम्मेदाराना टिप्पणी करने के लिए या अनुच्छेद 44 की पवित्र मन्शा के खिलाफ जाने के लिए आगे बढ़े।

5.

धार्मिक आजादी और समानता के अधिकार को लेकर ठहराव

विधि आयोग द्वारा अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 1.5 का प्रारम्भ यह कहकर किया गया है कि बहुत पहले से धर्म की स्वतन्त्रता और समानता के अधिकार के मध्य द्वन्द्व रहा है। एक तरफ जहाँ समाज में कट्टरपन्थी तत्त्व धार्मिक स्वतन्त्रता के पूर्ण अधिकार की माँग करते हैं, जहाँ धार्मिक परम्पराओं का परीक्षण नहीं किया जा सकता है, यहाँ तक कि संवैधानिक प्रावधानों द्वारा भी परीक्षण नहीं किया जा सकता है, वहीं दूसरी तरफ समानता के अधिकार के पक्षधर लोगों का सुझाव है कि कानून को सांस्कृतिक भिन्नताओं की तरफ तब नहीं देखना चाहिए, जब यह मानवाधिकार का मामला हो। ये दोनों विचार एक दूसरे से अनन्य नहीं हैं और कानून के प्रशासन के लिए धर्म की स्वतन्त्रता और समानता के अधिकार दोनों में सामंजस्य बनाना है।'

विधि आयोग द्वारा अगले ही पैरा सं. 1.6 में कहा गया है कि 'एक तरफ जहाँ धार्मिक आजादी एवं धर्म का प्रचार करने के अधिकार को धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र में मजबूती से सुरक्षित किया जाना चाहिए, वहीं इसे भी ध्यान में रखना महत्त्वपूर्ण है कि सती, देवदासी, दहेज, तीन तलाक, बाल विवाह जैसे तमाम सामाजिक कुरीतियाँ धार्मिक परम्परा के रूप में संरक्षित है। धर्म के रूप में कानून के अन्तर्गत इनका संरक्षण माँगना बहुत बड़ी मूर्खता है। मानवाधिकार के आधारभूत मूल्यों के अनुरूप नहीं होने के कारण ये परम्पराएँ धर्म के मूल हैं या नहीं हैं (इस वाक्य का अंग्रेजी शब्दावली 'For these practices do not conform with basic tenets of human rights are nor are they essential to religion.' कुछ अस्पष्ट है।)। धर्म का मूल होने के बाद भी यदि ये परम्पराएँ भेदभाव कर रही हैं, तो इन्हें जारी रखने का कोई कारण नहीं है, फिर भी हमारी महिला समूहों से परामर्श के दौरान यह सुझाव आया है कि महिलाओं के लिए धार्मिक पहचान महत्त्वपूर्ण है और भाषा, संस्कृति इत्यादि के साथ-साथ व्यक्तिगत कानून इस पहचान के भाग हैं और धार्मिक आजादी की तरह हैं।'

डॉ. चौहान आयोग द्वारा यह नहीं बताया गया है कि वे कौन सी महिला समूह हैं, जिन्होंने उसके समक्ष व्यक्तिगत कानून को धार्मिक आजादी की तरह होने का

सुझाव दिया था। सबसे अधिक आश्चर्यजनक यह है कि विधि आयोग उनके परामर्श पर बिना विवेक का प्रयोग किये स्वीकारोक्ति मुद्रा में सर नवाये खड़ा हो जाना उचित समझा है। एक बात यहाँ पर स्पष्ट कर देना प्रासंगिक है कि विधि आयोग के साथ हुई दो घण्टे की बैठक के दौरान 'मिशन आर्टिकल 44' की तरफ से हमने संविधान-सभा बहस के प्रसंगों का सन्दर्भ देते हुए सिद्ध किया था कि हमारे संविधान-निर्माताओं द्वारा व्यक्तिगत कानून को कभी भी धर्म या धार्मिक आजादी के भाग के रूप में स्वीकार नहीं किया गया और न इसे इस तरह स्वीकार किया जाना संविधान की मन्शा के अनुरूप ही है। किन्तु दुर्भाग्य से डॉ. चौहान आयोग अपने परामर्श-पत्र में 'मिशन आर्टिकल 44' द्वारा दिये गये इस विचार को संज्ञान में लेना उचित नहीं समझा।

पैरा सं. 1.6 में उक्त विचार व्यक्त करने के तुरन्त बाद अगले पैरा सं. 1.7 में विधि आयोग द्वारा कहा गया है कि समानता के अधिकार को पूर्ण अधिकार की तरह नहीं लिया जा सकता है। एक ऐसे देश में जहाँ सामाजिक असमानता हमारे समाज को कष्ट देती है और आर्थिक असमानता अजेय है, यह मानना गलत होगा कि सभी नागरिक समानता के अधिकार से एकरूपता के साथ लाभान्वित होंगे।

जिस तरह से विधि आयोग द्वारा समानता के अधिकार को पूर्ण अधिकार नहीं होने की और धार्मिक आजादी को धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र के लिए आवश्यक होने की बात कही गयी है, इसे सन्तुलित विचार नहीं कहा जा सकता है। हमारे संविधानिक ढाँचे में धर्म के अधिकार को भी पूर्ण या असीमित अधिकार के रूप में नहीं स्वीकार किया गया है। इस अधिकार को कई निर्बन्धनों यथा— लोक व्यवस्था, सदाचार, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण एवं सामाजिक सुधार के अधीन स्वीकार किया गया है। इसलिए जितना समानता का अधिकार पूर्ण नहीं है उतना ही धार्मिक आजादी भी पूर्ण नहीं है और साथ-ही-साथ जितना धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र को मजबूत बनाने के लिए धार्मिक आजादी आवश्यक है, उतना ही समानता का अधिकार भी आवश्यक है। किन्तु इन दोनों के बीच तुलनात्मक टिप्पणी करने के दौरान डॉ. चौहान आयोग अनावश्यक रूप से धार्मिक आजादी की तरफ झुका हुआ प्रतीत होता है।

डॉ. चौहान आयोग ने देश में सामाजिक असमानता के कष्टकारी होने एवं आर्थिक असमानता के अजेय होने की बात भी कही है और इस आधार पर समान नागरिक संहिता की प्रासंगिकता पर सवाल उठाया है। किन्तु वह यह भूल गया कि समान नागरिक संहिता का बहुत बड़ा उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक समानता के लक्ष्य को प्राप्त करना है। इसलिए समान नागरिक संहिता बनाने की दिशा में ईमानदारी

से कदम उठाकर डॉ. चौहान आयोग द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक समानता को प्राप्त करने की दिशा में एक सार्थक पहल किया जा सकता था। किन्तु आर्थिक असमानता को अजेय बताकर उसने पहले ही अपने हथियार डाल दिये।

सांस्कृतिक विविधता एक ऐसा विचार है, जिसको अक्षुण्ण एवं अजेय बनाये रखना हम सबकी जिम्मेदारी है। किन्तु सामाजिक असमानता एवं आर्थिक असमानता की स्थिति बिलकुल अलग है। सामाजिक असमानता को कष्टकारी बताकर इसके समाधान के लिए होने वाले उपायों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है और न ही आर्थिक असमानता को अजेय बताकर हम यथास्थितिवादी ही हो सकते हैं। इन दोनों को पराजित करना हमारे संविधान का लक्ष्य है। प्रस्तावना से लेकर मूल अधिकार एवं नीति-निदेशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत सामाजिक एवं आर्थिक समानता को प्राप्त करना संविधान का पवित्र उद्देश्य है। एक आदर्श राज्य की कल्पना यही है कि वह सामाजिक एवं आर्थिक समानता को हासिल करने की दिशा में सतत् रूप से कार्य करता रहे। किन्तु डॉ. चौहान आयोग कुछ निराशावादी हो गया। उसने यह विचार पालकर कि 'यह मानना गलत होगा कि सभी नागरिक (जो सामाजिक एवं आर्थिक रूप से असमान बने हुए हैं) समानता के अधिकार से एकरूपता के साथ लाभान्वित होंगे' यह निष्कर्ष निकाला है कि समान नागरिक संहिता को बनाना और लागू करना अनुचित होगा। इस तरह के विचार को गतिशील विचार नहीं कहा जा सकता है। ऐसा विचार इस देश को यथास्थितिवाद का शिकार बना देगा।

समान नागरिक संहिता सहित सभी नीति-निदेशक सिद्धान्त एक साधन हैं, जिसके माध्यम से हम सामाजिक एवं आर्थिक समानता के लक्ष्य को हासिल कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण से विधि आयोग द्वारा समान नागरिक संहिता को देखने की आवश्यकता थी। यदि डॉ. चौहान आयोग की यह सोच कि ऐसे कानूनों या संहिताओं से सभी नागरिक एकरूपता के साथ लाभान्वित नहीं हो पायेंगे, सही और व्यावहारिक होता तो दूसरे क्षेत्रों के सम्बन्ध में एकसमान रूप से लागू दूसरे कानून आज अप्रासंगिक हो गये होते। किन्तु फिर भी आज संविदा कानून, सम्पत्ति अन्तरण कानून, भारतीय दण्ड संहिता जैसे कानून सभी भारतीयों पर कुछ अपवादों के साथ एकरूपता के साथ बिना कोई धर्म आधारित भेदभाव के लागू हैं, ताकि देश की राष्ट्रीय एकता व अखण्डता अक्षुण्ण रहे और देश की राज-व्यवस्था और न्याय-प्रशासन सुगमता के साथ चलता रहे। राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को और भी अक्षुण्ण बनाने के लिए तथा देश की राज-व्यवस्था और न्याय-प्रशासन को और भी ज्यादा सुगम बनाने के लिए आवश्यक है कि सिविल क्षेत्र के सम्बन्ध में धर्म-आधारित विसंगतियों को

समाप्त कर समान नागरिक संहिता बनायी जाय और लागू किया जाय। अनुच्छेद 44 की इस पवित्र मन्शा को समझ पाने में डॉ. चौहान आयोग पूर्णतया विफल रहा है।

6.

समुदाय के अन्दर समानता को लेकर अनावश्यक अभ्यास

डॉ. चौहान आयोग द्वारा अपने परामर्श पत्र के पैरा सं. 1.4 के माध्यम से विधायिका से यह आग्रह किया गया है कि समुदायों के मध्य समानता के बजाय उसे पहले समुदाय के अन्दर ही पुरुष एवं महिला के मध्य समानता की गारण्टी देने पर विचार करना चाहिए। इस तरह से व्यक्तिगत कानूनों के मध्य कुछ अन्तरों को, जो सार्थक हैं, सुरक्षित किया जा सकता है और असमानता को अधिकतम सम्भव सीमाओं तक बिना पूर्ण एकरूपता के समाप्त किया जा सकता है।

आयोग के उपर्युक्त विचार के अनुसार व्यक्तिगत कानूनों को सुरक्षित बनाये रखना आवश्यक है, क्योंकि इनके मध्य कुछ सार्थक अन्तर हैं। शेष असमानता के व्यवहार को समुदाय के अन्दर ही समाप्त कर पुरुष और महिला के मध्य समानता लायी जानी चाहिए। ''व्यक्तिगत कानूनों के मध्य सार्थक अन्तर, जो सुरक्षित किये जाने योग्य हैं' से डॉ. चौहान आयोग का क्या तात्पर्य है, इसे स्पष्ट किया जाना चाहिए था। किन्तु वह इसे स्पष्ट करना या तो भूल गया या जान-बूझकर इसकी उपेक्षा कर दिया। आयोग की नजर में यदि सार्थक अन्तर धार्मिक आस्था को लेकर है, तो इससे शायद ही कोई व्यक्ति असहमत होगा। समान नागरिक संहिता की भी यही मन्शा है कि धार्मिक आस्था के तत्त्व को अलगकर सुरक्षित किया जाय और बाकी सभी सिविल व्यवहार को तार्किकता और समानता की कसौटी पर एकरूप किया जाय। यही विचार श्री के. एम. मुन्शी द्वारा अनुच्छेद 44 पर बहस के दौरान व्यक्त किया गया था। श्री मुन्शी के अनुसार 'हम धर्म को व्यक्तिगत कानूनों से, जिसे सामाजिक सम्बन्ध कहा जा सकता है या उत्तराधिकार या विरासत से सम्बन्धित पक्षकारों के अधिकारों से अलग करना चाहते हैं। इन सब चीजों का धर्म से क्या सम्बन्ध है। ... हम सब एक प्रगतिशील समाज हैं। हम सब इस दौर में हैं, जहाँ धार्मिक क्रियाकलापों में हस्तक्षेप किये बिना हमें देश को अवश्य ही एकीकृत करना चाहिए।'

डॉ. चौहान आयोग का मूल आग्रह कि समुदायों के मध्य समानता के बजाय पहले समुदाय के अन्दर ही पुरुष एवं महिला के मध्य समानता सुनिश्चित किया जाना

चाहिए, एक अनावश्यक एवं अतार्किक-सा अभ्यास लगता है। यदि समानता का कोई आदर्श पैमाना है तो यह कैसे माना जा सकता है कि वह भिन्न-भिन्न समुदाय के लिए अलग-अलग होगा अर्थात हिन्दू के लिए एक पैमाना होगा, मुसलमान के लिए अलग और ईसाई के लिए अलग पैमाना। यदि आप समानता की आदर्श कसौटी पर कसकर किसी एक समुदाय के सन्दर्भ में कोई व्यवस्था बनाते हैं, तो यह समझ के बाहर है कि कैसे वही व्यवस्था दूसरे समुदाय के लिए अलग हो जायेगा? इस सवाल के जवाब को एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है।

मुस्लिम व्यक्तिगत कानून के अन्तर्गत एक पुरुष एक साथ चार पत्नियों के साथ विवाह कर सकता है। यह छूट एक मुस्लिम महिला को नहीं प्राप्त है और न ही किसी दूसरे व्यक्तिगत कानून के अन्तर्गत किसी हिन्दू, ईसाई या पारसी को ही प्राप्त है, चाहे वह पुरुष हो या महिला।

एक से अधिक विवाह के सम्बन्ध में विधि आयोग यदि स्वयं द्वारा कही गयी बातों को स्वीकार करके मुस्लिम कानून में समानता और तार्किकता के सिद्धान्त को लागू करता तो उसके द्वारा चार सुधारात्मक संस्तुति किया जा सकता था। पहली संस्तुति यह कि मुस्लिम पति द्वारा एक से अधिक विवाह करने के लिए कोई-न-कोई तार्किक कारण या विशेष परिस्थिति होनी चाहिए; दूसरी संस्तुति इस सम्बन्ध में कि वे कौन-कौन-सी विशेष परिस्थितियाँ या तार्किक कारण हो सकते हैं, जब कोई मुस्लिम पति एक से ज्यादा विवाह कर सकता है और तीसरी संस्तुति इस सम्बन्ध में कि मुस्लिम पति को इस तरह का कोई तार्किक कारण या विशेष परिस्थिति किसी सक्षम प्राधिकारी के समक्ष दिखाकर उससे दूसरा विवाह करने की अनुमति लेना होगा, जैसा कि पाकिस्तान जैसे देशों में स्वीकार किया गया है। डॉ. चौहान आयोग द्वारा यह चौथी संस्तुति किया जा सकता था कि एक से अधिक विवाह करने के लिए जो सिद्धान्त मुस्लिम पुरुष के सन्दर्भ में लागू होगा, वही सिद्धान्त मुस्लिम औरत के सन्दर्भ में भी लागू होगा, क्योंकि इसने खुद भी पुरुष एवं महिला के मध्य समानता की गारण्टी दिये जाने की बात को स्वीकार किया है।

इसी तरह डॉ. चौहान आयोग हिन्दू व्यक्तिगत कानून या ईसाई व्यक्तिगत कानून या पारसी व्यक्तिगत कानून के सन्दर्भ में यह संस्तुति कर सकता था कि एक दाम्पत्य के रहते दूसरा विवाह करने की विशेष परिस्थिति या तार्किक कारण जिस तरह मुस्लिम पति या पत्नी के समक्ष आ सकता है, उसी तरह एक हिन्दू पति या हिन्दू पत्नी के समक्ष या ईसाई पति या ईसाई पत्नी के समक्ष या पारसी पति या पारसी पत्नी के समक्ष भी आ सकता है। अत: विशेष परिस्थितियों के मौजूद होने और अनुमति

लेने की शर्त के अधीन एक से अधिक विवाह करने की छूट वाले प्रावधान हिन्दू व्यक्तिगत कानून या ईसाई व्यक्तिगत कानून या पारसी व्यक्तिगत कानून में भी होना चाहिए।

अब यदि मुस्लिम कानून या हिन्दू कानून या ईसाई कानून में उपर्युक्त आवश्यक सुधार का ईमानदारी से प्रयास किया जाय तो अन्तिम परिणाम में शायद ही कोई अन्तर आयेगा। सिवाय इसके कि यह कहकर कि यह हिन्दू का सिविल कानून है, यह मुस्लिम का सिविल कानून है, यह ईसाई का सिविल कानून है, कुछ लोगों की अलगाववादी जिद्द सन्तुष्ट होती रहेगी, और क्या लाभ हो रहा है, इसका जवाब उन तथाकथित सेकुलरवादियों को ही देना है, जो जब-तब हिन्दु राष्ट्रवाद के नाम पर खौफ होने का भाव दिखाते रहते हैं। यह भारतीयों के मध्य धर्म-आधारित अनावश्यक पृथक्करणीय भाव है, जिसको समाप्त करने के लिए हमारे संविधान-निर्माताओं ने समान नागरिक संहिता, जिसे मैं कानूनी भाषा में 'भारतीय सिविल संहिता' कहना चाहूँगा, की अवधारणा दिया है। किन्तु दुर्भाग्य से डॉ. चौहान आयोग द्वारा इस मूल अवधारणा को दरकिनार करने का प्रयास किया गया है और 182 पृष्ठ वाले अपने परामर्श-पत्र में कई विषयों को लेकर अनावश्यक व खोखला अभ्यास किया गया है।

अब डॉ. चौहान आयोग द्वारा अपने परामर्श-पत्र में बहुविवाह के सन्दर्भ में क्या कहा गया है, उसको भी साथ-साथ जानना और समझना उचित है। अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 2.91 में आयोग ने कहा है कि 'भारतीय सन्दर्भ में बहुतायत मामलों में यह स्पष्ट है कि महिलाओं ने अपने पति के दूसरे विवाह या पश्चात्वर्ती विवाह को लेकर कुछ नहीं कहा है। इसलिए बहुविवाह पर विचार करते समय पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण बात महिला का हित है।' अगले पैरा सं. 2.92 में डॉ. चौहान आयोग कहता है कि 'यद्यपि इस्लाम में बहुविवाह अनुमन्य है, किन्तु यह भारतीय मुसलमानों में बहुत कम देखने को मिलता है। जबकि इसे दूसरे धर्म के लोगों द्वारा, जो दूसरी शादी करने के लिए मुस्लिम धर्म स्वीकार करते है, तेजी से दुरुपयोग किया जाता है।' इस तरह आयोग द्वारा मुस्लिम कानून में मान्य बहुविवाह को बचाने की हर सम्भव कोशिश की गयी है और इस कोशिश में उसने जिस तरह बिना कोई सर्वे कराये निष्कर्ष दिया है, उससे कोई भी जिम्मेदार संस्था बचना चाहेगी।

डॉ. चौहान आयोग द्वारा आगे कहा गया है कि तुलनात्मक कानून से स्पष्ट है कि केवल कुछ ही मुस्लिम देशों में बहुविवाह के अधिकार को सुरक्षित किया गया है और वह भी नियन्त्रित व्यवस्था के साथ सुरक्षित किया गया है। विधि आयोग ने

पैरा सं. 2.94 में पाकिस्तान के कानून का हवाला दिया है, जिसके अन्तर्गत आपवादिक परिस्थिति में समझौता परिषद् की पूर्व अनुमति और पहली पत्नी या पत्नियों की सहमति से बहुविवाह किया जा सकता है। इसके बाद अन्त में डॉ. चौहान आयोग द्वारा पैरा सं. 2.99 में यह सुझाव दिया है कि निकाहनामा में ही यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि बहुविवाह धारा 494 के अन्तर्गत एक आपराधिक कृत्य है और यह सभी समुदाय पर लागू होगा।

डॉ. चौहान आयोग की स्थिति वैसे ही हो गयी जैसे तोड़ा पहाड़ निकली चुहिया। तमाम मुस्लिम देशों एवं पाकिस्तान द्वारा बहुविवाह के सन्दर्भ में अपनायी गयी व्यवस्था का उल्लेख करने के बाद वह निकाहनामा पर आकर अटक गया। वह यह कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाया कि पाकिस्तान में लागू इस व्यवस्था कि आपवादिक परिस्थिति में समझौता परिषद की पूर्व अनुमति और पहली पत्नी या पत्नियों की सहमति से बहुविवाह किया जा सकता है, में तार्किकता है और इसको कानून के रूप में भारत में मुस्लिम संहिता में शामिल किया जाना चाहिए। यदि विधि आयोग द्वारा यह कहने की हिम्मत जुटा लिया गया होता तो यह भारतीय मुस्लिम कानून में सुधार की दिशा में बहुत बड़ा पहल होता। किन्तु दुर्भाग्य से डॉ. चौहान आयोग द्वारा ऐसा करने की हिम्मत नहीं जुटाया जा सका।

बिना सर्वेक्षण किये डॉ. चौहान आयोग यह टिप्पणी करके सन्तुष्ट-सा दिखता है कि बहुविवाह भारतीय मुसलमानों में बहुत कम देखने को मिलता है और मुस्लिम धर्म में लागू बहुविवाह की व्यवस्था का दुरुपयोग दूसरे धर्म के लोगों द्वारा मुस्लिम धर्म अपनाकर तेजी से किया जाता है। उसकी इस बात में कोई रुचि नहीं है कि इस तरह के तथ्यों में यदि सच्चाई है तो इसका समाधान निकाला जाय और इसकी चिन्ता की जाय कि गैर-मुस्लिम धर्म के लोगों द्वारा मुस्लिम कानून में स्वीकृत बहुविवाह व्यवस्था का दुरुपयोग न किया जा सके। यदि वह इस दिशा में थोड़ा सा भी ईमानदारी से प्रयास करता तो उसे यह समझ में आ जाता कि ऐसा इसलिए है क्योंकि भारत के मुस्लिम कानून में आँख मूँदकर एक से अधिक विवाह करने की छूट दी गयी है और दूसरे धर्म के व्यक्तिगत कानूनों में इसे लेकर अनावश्यक रूप से कुछ ज्यादा ही कड़ाई दिखाया गया है। ये दोनों स्थिति अतिरेक की स्थिति है, जिसका समाधान देते हुए कानूनी सुधार करने की आवश्यकता थी, ताकि मुस्लिम कानून में मान्य चतुर्पत्नी विवाह की व्यवस्था का दुरुपयोग न मुस्लिम धर्म के लोगों द्वारा किया जा सके और न ही दूसरे धर्म के लोगों को इसका इस्तेमाल करने के लिए अपना धर्म छोड़ने की आवश्यकता महसूस हो। किन्तु लगता है कि

डॉ. चौहान आयोग को ऐसे कानूनी सुधार में सुधार करने के बजाय गैर-मुस्लिम धर्म यानी हिन्दू, सिख, ईसाई या पारसी के लोगों को नीचा दिखाना ज्यादा सुहाया है।

7.

व्यक्तिगत कानून की स्थिति को लेकर सन्देह

अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 1.3 में विधि आयोग ने कहा है कि 'व्यक्तिगत कानून भारतीय संविधान के अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत कानून है या नहीं या यदि है, तो क्या वे अनुच्छेद 25-28 के अन्तर्गत सुरक्षित हैं या नहीं, यह विषय कई मामलों में विवादित रहा है, जिसमें नारसा अप्पु माली का मामला सबसे अधिक उल्लेखनीय है।' इसके तुरन्त बाद विधि आयोग आगे कहता है कि समान नागरिक संहिता पर सर्वसहमति के अभाव में आयोग का विचार है कि व्यक्तिगत कानूनों की विविधता को सुरक्षित करना सबसे उपयुक्त है, किन्तु उसी समय यह भी सुनिश्चित करे कि व्यक्तिगत कानून संविधान के अन्तर्गत गारण्टी किये गये मूल अधिकार से असंगत न हो।'

अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत कोई विषय कानून की परिभाषा में आता है या नहीं, यह सवाल तब पैदा होता है, जब उस विषय को चुनौती दी गयी हो। विधि आयोग के समक्ष व्यक्तिगत कानून को लेकर ऐसी कोई स्थिति नहीं थी। किन्तु नरेन्द्र मोदी सरकार द्वारा समान नागरिक संहिता पर कार्य करने के लिए कहने के स्थान पर इस पर राय माँगे जाने का यह परिणाम है कि विधि आयोग को यह आजादी मिल गयी कि वह शुचिता के खिलाफ जाकर सर्वसहमति का अभाव होने की बात करे और संविधान की मन्शा के विरुद्ध यह विचार रखे कि व्यक्तिगत कानून को संरक्षित किया जाना आवश्यक है। इसलिए यहाँ पर यह समझना आवश्यक है कि व्यक्तिगत कानून क्या हैं और क्या संविधान के अन्तर्गत व्यक्तिगत कानून को किसी तरह का संरक्षण प्राप्त है?

व्यक्तिगत कानून की अवधारणा के पीछे मूल भाव इनका धर्म-आधारित होना है। इस कारण ये कानून अलग-अलग धर्मों के लिए अलग-अलग होते हैं। ये सार्वजनिक किस्म के कानून यथा अपराध कानून या सम्पत्ति कानून हो सकते हैं या निजी किस्म के यथा दायित्व कानून या परिवारिक कानून भी हो सकते हैं। चूँकि इन

कानूनों का लागू होना एक व्यक्ति की धार्मिक आस्था के अनुसार तय होता है, इसलिए भी इन्हें व्यक्तिगत कानून कहा जाता रहा है। धीरे-धीरे राज्य और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा का प्रभाव बढ़ने के उपरान्त ये सभी क्षेत्र धर्म एवं धर्म-आधारित कानून के दायरे से बाहरे हो गये। किन्तु भारत में पारिवारिक कानून अपवाद के रूप में, वह भी केवल इस्लाम के सन्दर्भ में, बना रहा। बाकी धर्मों के लिए यद्यपि अलग-अलग कानून हैं, किन्तु वे राज्य द्वारा विनियमित किये जाते हैं। मुस्लिम व्यक्तिगत कानून के साथ यह स्थिति नहीं है। जहाँ हिन्दू व्यक्तिगत कानून या ईसाई व्यक्तिगत कानून या पारसी व्यक्तिगत कानून राज्य-तन्त्र से नियमित होते हैं, वहीं मुस्लिम व्यक्तिगत कानून अभी भी धर्म द्वारा नियमित किये जा रहे हैं।

एक ही देश में एक विषय के सम्बन्ध में अलग-अलग धर्म के लिए अलग-अलग कानून होने के कारण विसंगतियाँ एवं समस्याएँ पैदा होती रहती हैं। सिविल कानून को लेकर धर्म आधारित इन विसंगतियों को समाप्त करना और इसे समानता एवं तार्किकता की कसौटी पर कसकर सभी नागरिकों के सिविल व्यवहार को संचालित करने के लिए एक सर्वमान्य कानून बनाना समान नागरिक संहिता की अवधारणा है। मतलब साफ है कि धर्म-आधारित सभी व्यक्तिगत कानूनों का स्थान समान नागरिक संहिता ले लेगा और यह देश इस कलंक से मुक्त हो जायेगा कि यह सिविल कानून हिन्दुओं का है, यह मुसलमानों का, यह ईसाइयों का और यह पारसियों का।

किन्तु लगता है विधि आयोग व्यक्तिगत कानून और समान नागरिक संहिता की उक्त अवधारणा को समझने में बिलकुल नाकाम रहा है। विधि आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष न्यायमूर्ति बी.एस. चौहान, जिनकी अध्यक्षता में यह परामर्श-पत्र बनाया गया है, द्वारा सार्वजनिक रूप से 5 दिसम्बर, 2017 को यह बयान दिया गया था कि व्यक्तिगत कानून अनुच्छेद 25 के अन्तर्गत संविधान का एक भाग है और इसे समाप्त नहीं किया जा सकता है। मेरे जैसे नागरिक के लिए विधि आयोग के अध्यक्ष का यह बयान चौंकानेवाला बयान था। जस्टिस चौहान के उक्त बयान का मीडिया में आने के तुरन्त बाद संस्था 'लोक सर्वोदय फाउण्डेशन' द्वारा चलाये जा रहे 'मिशन अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून' का एक प्रतिनिधि-मण्डल विधि आयोग से 9 जनवरी, 2018 को मिला। विधि आयोग के चेयरमैन एवं अन्य सदस्यों को यूनिफॉर्म सिविल संहिता विषय पर लिखी गयी शोध पुस्तक 'भारतीय सिविल संहिता के सिद्धान्त : अनुच्छेद 44 के क्रियान्वयन के अनुक्रम में' और इसका अंग्रेजी

अनुवाद भी भेंट किया गया और उन सभी बिन्दुओं पर चर्चा की गयी, जिसकी सहायता से देश के लिए समान नागरिक संहिता बनाया जा सकता है।

विधि आयोग के साथ हुई दो घण्टे की मुलाकात के दौरान व्यक्तिगत कानून के संवैधानिक संरक्षण के बिन्दु पर भी चर्चा हुई और मैंने विधि आयोग को बताया कि भारत में व्यक्तिगत कानूनों को कभी भी संवैधानिक संरक्षण नहीं प्राप्त है। विधि आयोग का ध्यान संविधान-सभा द्वारा लिये गये निर्णय की तरफ भी आकृष्ट कराया गया, जिसमें व्यक्तिगत कानून को मूल अधिकार के रूप में स्वीकार करने के लिए तीन-तीन बार लाये गये संशोधन-प्रस्ताव को संविधान-सभा द्वारा खारिज कर दिया गया था।

शायद 'मिशन आर्टिकल 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून' के प्रतिनिधि-मण्डल के मुलाकात का प्रभाव था कि डॉ. चौहान आयोग अपने परामर्श-पत्र में कम-से-कम व्यक्तिगत कानून के अधिकार को मूल अधिकार नहीं कह सका। किन्तु इसके बावजूद जिस तरह से विधि आयोग ने पीछे से हाथ घुमाकर नाक पकड़ने की कोशिश की है और व्यक्तिगत कानून के सन्दर्भ को जिस तरह संवैधानिक धरातल प्रदान करने की कोशिश की है, वह संविधान-सभा की मन्शा के खिलाफ है। अपने परामर्श-पत्र के पैरा संख्या 1.8 में विधि आयोग ने कहा है कि 'व्यक्तिगत कानून भले ही ठीक तरीके से उपनिवेशीय भारत में जन्म ले लिया हो, किन्तु आजादी के बाद यह मजबूत, पुनर्गठित और सुदृढ़ हुआ है। ऐसा ही महत्त्वपूर्ण सामाजिक विधायन जिसे स्वतन्त्र भारत में लाया गया, वह है हिन्दू कानून में संशोधन। इन संशोधनों को भारत के कई भागों में भारी विरोध का सामना करना पड़ा और सबसे मुखर और प्रसिद्ध विरोध हिन्दू महासभा से आया था। लगातार विरोध के बावजूद हिन्दू कानून समिति नेहरू और अम्बेडकर के दिशानिर्देश में सुधारों पर मनन करना जारी रखे रहे।'

व्यक्तिगत कानून को मानने के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में स्वीकार किये जाने के लिए लाये गये संशोधन प्रस्ताव का जवाब देते हुए डॉ. अम्बेडकर ने जो बात कही थी, उसका यहाँ उल्लेख करना उचित है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार—

> 'यह आवश्यक नहीं है कि कानून, जैसे किरायेदारी के कानून या उत्तराधिकार के कानून, धर्म द्वारा संचालित हों। यूरोप में ईसाइयत है, लेकिन ईसाइयत का अर्थ यह नहीं होता है कि ईसाई पूरे विश्व या यूरोप में जहाँ भी रहते हैं,

उत्तराधिकार के समान व्यवस्था रखेंगे। ऐसी किसी चीज का अस्तित्व नहीं होता है। मैं व्यक्तिगत रूप से नहीं समझता हूँ कि धर्म को इतना विस्तृत और व्यापक क्षेत्र क्यों दिया जाना चाहिए जो सम्पूर्ण जीवन पर कब्जा कर ले और विधायिका को इन क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने से रोके। सबके बाद, हम इस स्वतन्त्रता को किसके लिए रख रहे हैं? हम सब इस स्वतन्त्रता का प्रयोग उस सामाजिक व्यवस्था में सुधार लाने के लिए रखते हैं, जो अन्याय, भेदभाव और ऐसी तमाम चीजों से भरे पड़े हैं, जो मूल अधिकारों से असंगत होते हैं। इसलिए किसी के लिए यह अनुमान करना बिलकुल असम्भव है कि व्यक्तिगत कानून राज्य के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा जायेगा।'

डॉ. चौहान आयोग द्वारा यदि डॉ. अम्बेडकर के उक्त विचार को ध्यान में रखा गया होता और व्यक्तिगत कानूनों में कमियों को लेकर या व्यक्तिगत कानूनों के मध्य विसंगतियों को लेकर आजादी के बाद विभिन्न स्तर पर न्यायालयों में दाखिल हुए मुकदमों का और इन्हें तय करने में हुए नुकसान का आँकड़ा एकत्रित किया गया होता तो शायद वह यह समझ जाता कि व्यक्तिगत कानूनों को समाप्त करने और इनके स्थान पर समान नागरिक संहिता बनाकर लागू करने की आवश्यकता इस देश द्वारा हमेशा महसूस किया जाता रहा है। बेशक समान नागरिक संहिता का विरोध करना या इसका पक्ष लेना इस देश की राजनीतिक पार्टियों के लिए राजनैतिक लाभ का विषय रहा हो, किन्तु जिस ईमानदार राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव के कारण समान नागरिक संहिता का निर्माण नहीं हो सका, उसकी भरपायी विधि आयोग द्वारा अपने कानूनी कौशल से किया जा सकता था। दुर्भाग्य से डॉ. चौहान आयोग द्वारा यह कौशल नहीं दिखाया जा सका और इस देश द्वारा उनपर किये गये भारी खर्च के औचित्य को सही सिद्ध करने में विफल रहा।

8.

मुस्लिम कानून के संहिताकरण को लेकर दुविधा

यह सही है कि समान नागरिक संहिता के पक्ष में संविधान-सभा द्वारा सर्वसहमति से प्रस्ताव पारित किये जाने और समय-समय पर सुप्रीम कोर्ट द्वारा कई निर्णय दिये जाने के बावजूद हमारे राजनीतिक नेतृत्व द्वारा कभी भी समान नागरिक संहिता को लेकर मजबूत इच्छाशक्ति नहीं दिखायी जा सकी। किन्तु आज भी हालात

वही हों, यह आवश्यक नहीं है। केन्द्र की मोदी सरकार द्वारा समान नागरिक संहिता के सम्बन्ध में विधि आयोग से राय माँगकर, थोड़ा ठिठककर ही सही, फिर भी एक कदम आगे बढ़ाया गया। इस पहल को विधि आयोग और आगे बढ़ा सकता था। किन्तु दुर्भाग्य से ऐसा नहीं किया जा सका। डॉ. चौहान आयोग इस बात को लेकर दृढ़ता दिखायी है कि इस देश में धर्म-आधारित अलग-अलग व्यक्तिगत कानूनों का बने रहना उचित है और इसके अन्दर ही यथोचित सुधार किया जाना चाहिए।

डॉ. चौहान आयोग मुस्लिम कानून के संहिताकरण के बिन्दु पर 1937 के शरीयत कानून से सन्तुष्ट होता दिखता है। अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 2.71 में विधि आयोग कहता है कि 1937 में मुस्लिम व्यक्तिगत कानून के भागों का कई तरह से मुस्लिम व्यक्तिगत कानून (शरीयत) अनुप्रयोग अधिनियम, 1937 और मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1939 के रूप में संहिताकृत किया गया है, जिसने धार्मिक पारिवारिक कानूनों में सुधार को आगे बढ़ाया है। मुस्लिम कानून न केवल महिलाओं की सम्पत्ति में पूर्ण अधिकार को मान्यता देता है, बल्कि महिलाओं को विवाह-विच्छेद करने का अधिकार भी देता है। विधि आयोग आगे कहता है कि 1960 में नेहरू द्वारा ए.ए.ए. फैजी, जिन्होंने एक मुस्लिम कानून समिति के विचार का प्रस्ताव दिया था, के साथ संहिताकरण करने का प्रयास किया गया था। किन्तु बाद में समुदाय के भीतर से ही विरोध होने के कारण इसे वापस ले लिया गया।'

1937 के कानून के सन्दर्भ में यह कहना सच्चाई से परे है कि यह कानून मुस्लिम व्यक्तिगत कानून के किसी भाग का संहिताकरण करता है। यह कानून भारतीय मुसलमानों को शरीयत से संचालित होने की मान्यता देता है। यह सिर्फ इतना प्राविधानित करता है कि कुछ विषयों जैसे विवाह, विवाह-विच्छेद, भरण-पोषण, मेहर, दान, संरक्षकत्व, उत्तराधिकार, ट्रस्ट इत्यादि के सम्बन्ध में मुसलमानों पर शरीयत लागू होगा। यह कानून यह नहीं बताता है कि शरीयत क्या है या किसी एक विषय पर शरीयत के क्या-क्या नियम हैं।

जहाँ तक 1939 के कानून का सवाल है, यह कानून मुस्लिम महिलाओं को न्यायालय के माध्यम से नौ अन्य आधारों पर विवाह-विच्छेद की डिक्री हासिल करने का अधिकार देता है। 1939 के पहले मुस्लिम कानून के अन्तर्गत पत्नी को सिर्फ चार आधार पर विवाह-विच्छेद करने का अधिकार प्राप्त था। पहला पति के नपुंसक होने के आधार पर; दूसरा 'लिएन का आधार' अर्थात् जब पति द्वारा पत्नी पर लगाया गया व्यभिचार का आरोप झूठा साबित हो जाय; तीसरा ख्यार-उल-बुलुग अर्थात् वयस्कता का विकल्प और चौथा जिहार अर्थात् जब पति पत्नी की तुलना अपनी माँ

से कर दे। इसके अलावा पत्नी दो अन्य तरीके '**खुला**' या '**मुबारत**' के माध्यम से विवाह-विच्छेद कर सकती थी। '**खुला**' के अन्तर्गत पत्नी पति की सहमति से उसे मुआवजा देकर विवाह-विच्छेद कर सकती थी और '**मुबारत**' के अन्तर्गत पति और पत्नी दोनों की आपसी सहमति से विवाह-विच्छेद किया जा सकता था। यह अंग्रेजी हुकूमत के कोड़े का ही नतीजा था कि 1939 के कानून के माध्यम से मुस्लिम महिलाओं को नौ अन्य आधारों पर विवाह-विच्छेद की डिक्री हासिल करने का अधिकार मिल सका था।

अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 2.87 में यद्यपि विधि आयोग ने यह परामर्श दिया है कि 1939 के अधिनियम में दिये गये आधारों को महिलाओं के साथ-साथ पुरुषों पर लागू कर देना चाहिए। किन्तु विधि आयोग इस बात को संज्ञान में लेना भूल गया कि 1939 का अधिनियम केवल न्यायालयों के माध्यम से महिलाओं को विवाह-विच्छेद की डिक्री लेने का अधिकार प्रदान करता है। और यदि इसे पुरुषों पर भी लागू कर दिया जाय तो यही स्थिति बनेगा कि एक मुस्लिम पति को भी न्यायालय के समक्ष ऐसे किसी एक आधार को सिद्ध करना होगा। बावजूद इसके कि विधि आयोग ऐसा परामर्श देते समय बिलकुल भी गम्भीर नहीं था क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि विवाह-विच्छेद के लिए जो आधार पत्नी के लिए उचित हो, वही एक पति के लिए भी उचित हो, फिर भी मुस्लिम कानून के सन्दर्भ में यह सम्पूर्ण स्थिति नहीं है।

लगता है कि विधि आयोग ने मात्र शेखी बघारने के लिए उक्त परामर्श दिया है, अन्यथा यह एक भ्रम से ज्यादा कुछ नहीं है। ईमानदारी की बात यह है कि शायद ही कोई मुस्लिम पति हो जो अपने पत्नी से विवाह-विच्छेद करने के लिए न्यायालय की शरण लेता हो। तलाक-ए-हसन या तलाक-ए-अहसन का प्रयोग तो करता ही नहीं है, न्यायालय की शरण लेना बहुत दूर की बात होती है। ज्यादातर तलाक-उल-बिद्दत यानी तत्काल तीन तलाक का दुरुपयोग करके अपनी बीबी से छुटकारा लेने की सुविधा का प्रयोग करते रहे हैं। यह हो सकता है कि शायरा बानो निर्णय आ जाने के बाद अब मुस्लिम पति तलाक-उल-बिद्दत का दुरुपयोग न कर पाये, किन्तु कुछ मुस्लिम धर्मगुरुओं ने इसके विकल्प के रूप में तलाक-ए-बाइन का आविष्कार कर लिया है। इसके बावजूद भी मुस्लिम पति को तलाक-उल-बिद्दत के स्थान पर तलाक-ए-हसन या तलाक-ए-अहसन का दुरुपयोग करने की छूट अभी भी प्राप्त है।

विधि आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति डॉ. बी. एस. चौहान एवं अन्य सदस्यों के

साथ हुई 'मिशन आर्टिकल 44' की बैठक में तलाक के इन सभी विन्दुओं पर खुलकर चर्चा की गयी थी। न्यायमूर्ति डॉ. चौहान द्वारा मौखिक तलाक के सम्बन्ध में इन विसंगतियों को स्वीकार भी किया गया था। उम्मीद थी कि विधि आयोग विवाह-विच्छेद के इन दोनों मौखिक तरीकों यानी तलाक-ए-हसन और तलाक-ए-अहसन को पारदर्शी बनाने की चिन्ता करेगा और इस प्रकार के मौखिक विवाह-विच्छेद के लिए कोई-न-कोई एक तार्किक आधार होने को बाध्यकारी बनाने और इनके खिलाफ भी न्यायालय में अपील करने का प्रावधान बनाने की संस्तुति करेगा। किन्तु दुर्भाग्य से इस तरह के कानून-सुधार की संस्तुति करने के बजाय डॉ. चौहान आयोग द्वारा सुप्रीम कोर्ट के शमीम आरा निर्णय में ओबिटर डिक्टा खोजा जाने लगा और इसका अबाध्यकारी होना सिद्ध करने में अपना पूरा समय लगा दिया गया। स्वयं विधि आयोग भी किसी तरह के मुस्लिम संहिता के प्रारूप को प्रस्तुत करने में विफल रहा।

9.

हिन्दू अविभाजित परिवार पर अनुचित हमला

डॉ. चौहान आयोग द्वारा अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 5.26 में 'हिन्दू सहदायिकी' की व्यवस्था को समाप्त करने योग्य बताया गया है और शीर्षक 'हिन्दू अविभाजित परिवार की समाप्ति' के पैरा सं. 5.31 में कर-छूँट मिलने के कारण हो रहे राजस्व हानि के आधार पर यह निष्कर्ष दिया गया है कि आजादी मिलने के 72 वर्ष बाद भी हिन्दू अविभाजित परिवार (एच.यू.एफ.) की व्यवस्था का बने रहना अनुचित है।

इसके पहले वर्ष 2000 में विधि आयोग द्वारा अपने 174वें रिपोर्ट के माध्यम से हिन्दू-सहदायिकी की व्यवस्था को समाप्त करने की संस्तुति की गयी थी। किन्तु यह भी कहा था कि जब तक सहदायिकी में पुत्रियों को भी शामिल नहीं कर दिया जाता है, इसे समाप्त करना उचित नहीं है। चूँकि वर्ष 2005 में पुत्रियों को सहदायिकी में शामिल कर दिया गया है, इसी को आधार बनाकर डॉ. चौहान आयोग ने पैरा सं. 5.26 में हिन्दू सहदायिकी को समाप्त करने का सुझाव दिया है। इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए डॉ. चौहान आयोग द्वारा पैरा सं. 5.27 में कहा गया है कि हिन्दू

अविभाजित परिवार (एच.यू.एफ.) के अवधारणा की जड़ संयुक्त हिन्दू परिवार में निहित है। इसलिए इसे एक व्यापारिक संस्था के रूप में कानूनी-हैसियत और पृथक कर-हैसियत के रूप में मान्यता दिया गया है। पैरा सं. 5.28 व 5.29 में आगे कहा गया है कि वर्तमान समय में हिन्दू अविभाजित परिवार न तो कॉर्पोरेट-शासन के और न ही कर-प्रशासन के अनुकूल है। केवल कर उद्देश्य से हिन्दू अविभाजित परिवार को विशेष हैसियत प्रदान किया गया है। अब इस हैसियत का उपयोग केवल कर से छूँट पाने के लिए किया जा रहा है। पैरा सं. 5.30 व 5.31 में निष्कर्ष दिया गया है कि जैसे ही सहदायिकी समाप्त हो जाता है, हिन्दू अविभाजित परिवार जैसी संस्था भी अपरिहार्य रूप से समाप्त हो जायेगा। आज जब आजादी प्राप्त हुए 72 वर्ष हो गये हैं, यह उचित समय है कि यह समझा जाय कि देश के राजस्व से समझौता करके सिर्फ गहरे भावनात्मक जुड़ाव के आधार पर इस संस्था को बचाना उचित नहीं है।

पिछले वर्ष 'मिशन अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून' द्वारा 23 नवम्बर को मनाए गए 'समान नागरिक संहिता दिवस' के अवसर पर बोलते हुए श्री एसएफए नकवी द्वारा ऐसा ही कुछ सवाल उठाया गया था। उनका कहना था कि समान नागरिक संहिता बनना चाहिए, किन्तु कुछ उदाहरण ऐसे हैं जिसमें धर्म के नाम पर हिन्दुओं को भेदकारी लाभ दिया जाता है। इनमें हिन्दू अविभाजित परिवार को मिलने वाला कर-छूँट भी है। इसे भी समाप्त किया जाना चाहिए। एक तरफ जहाँ श्री नकवी जी का पारिवारिक ढाँचे से कोई मतलब नहीं है, बल्कि उनके द्वारा कर-छूँट सहित किसी तरह के धर्म-आधारित भेदभाव को अनुचित बताया गया और माँग किया गया कि ऐसे धर्म-आधारित भेदभाव समाप्त किये जाने चाहिए, वहीं डॉ. चौहान आयोग ने संस्था 'हिन्दू अविभाजित परिवार' को ही समाप्त करने की इच्छा व्यक्त की है और उसे लगता है कि ऐसा किये बिना कर-छूँट के सम्बन्ध में विसंगति को समाप्त नहीं किया जा सकता है।

एक पृथक कानूनी हैसियत के रूप में एक अविभाजित परिवार को कर-छूँट का लाभ मिलना चाहिए या नहीं, यह विषय कर-सुधार से सम्बन्धित गम्भीर विषय है। यदि डॉ. चौहान आयोग के समक्ष कर-सुधार से जुड़ा सवाल होता और तब इस तरह का कोई सुझाव दिया जाता तो इसका महत्त्व होता। किन्तु पारिवारिक कानूनों में या कर-ढांचे में सुधार करने के नाम पर हिन्दू अविभाजित परिवार को ही अनुचित बताकर इसपर हमला बोल देना कही से भी उचित नहीं है। यह सही है कि सिर्फ हिन्दू होने के आधार पर किसी अविभाजित परिवार को अलग कानूनी हैसियत देकर किसी तरह के कर-छूँट का लाभ नहीं मिलना चाहिए। किन्तु एक सच्चाई यह भी

है कि अविभाजित परिवार की अवधारणा केवल हिन्दू में ही है। यही कारण है कि हिन्दू अविभाजित परिवार (एच. यू. एफ.) को अलग विधिक-व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। यदि इस तरह की अवधारणा दूसरे धर्मों में होता और उन्हें कर-छूँट का लाभ नहीं प्राप्त हो पाता तो यह अनुचित होता।

डॉ. चौहान आयोग जब सिविल कानून के सम्बन्ध में धर्मों के अलग-अलग अस्तित्व को समाप्त करने के लिए तैयार नहीं है तो उसे यह भी समझना चाहिए था कि यह पूर्णतया सम्भव है कि हिन्दू धर्म का पारिवारिक ढाँचा अलग हो सकता है और मुस्लिम या ईसाई धर्म का अलग। इसलिए उसके द्वारा इस तरह का परामर्श देना कदापि उचित नहीं है। हॉ, यदि आप यह कह रहे होते कि सिविल कानूनों के सम्बन्ध में धर्म के आधार पर भेदभाव उचित नहीं है तो शायद डंके की चोट पर हिन्दू अविभाजित परिवार के नाम पर मिलने वाले कर-छूँट को समाप्त करने का सुझाव दिया जा सकता था। किन्तु यह सुझाव भी मात्र कर-छूँट के सवाल तक ही सीमित रहता। इसके लिए भी पहले यह तय करना होता कि किसी अविभाजित परिवार को कानूनी हैसियत मिलनी चाहिए या नहीं और यदि मिलनी चाहिए तो क्या इससे होने वाले कर-छूँट का लाभ दिया जाना चाहिए या नहीं। अगर यदि इन दोनों सवालों का जवाब नकारात्मक आता तो यह कहा जा सकता है कि किसी भी अविभाजित परिवार, चाहे वह किसी धर्म से ताल्लुक रखता हो, को किसी तरह का कर-छूँट का लाभ नहीं दिया जाना चाहिए। किन्तु सिर्फ इस आधार पर यह कहना कि एक कानूनी हैसियत के रूप में अविभाजित परिवार को कर-छूँट का लाभ प्राप्त हो रहा है और यह केवल हिन्दुओं के सम्बन्ध में हो रहा है, इसलिए हिन्दू अविभाजित परिवार रूपी संस्था को ही समाप्त कर देना चाहिए, बिलकुल अनुचित है। अविभाजित परिवार होने के कारण मिलने वाले कर-छूँट का लाभ कर-सुधार का विषय है। किन्तु जब विधि आयोग ने स्वयं अपने को अलग-अलग धर्मों के व्यक्तिगत कानून में सुधार तक सीमित कर लिया है, तो उसके द्वारा हिन्दू अविभाजित परिवार रूपी पारिवारिक ढाँचा पर किसी तरह का हमला अनुचित है। हिन्दू अविभाजित परिवार को अनुचित ठहराने एवं इसे समाप्त करने की बात को कहीं से भी व्यक्तिगत कानून में सुधार का भाग नहीं कहा जा सकता है। किन्तु दुर्भाग्य से डॉ. चौहान आयोग द्वारा यह गलती कर दी गयी है और खासतौर से हिन्दुओं की भावनाओं को गैरतार्किक तरीके से उपेक्षणीय बताने की टिप्पणी करके और भी बड़ी गलती कर दी गयी है।

10.

संविधान की छठी अनुसूची पर गैरजिम्मेदाराना कार्य

'मिशन अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून' के प्रतिनिधि-मण्डल की दिनांक 9 जनवरी, 2018 को विधि आयोग के साथ हुई बैठक में अध्यक्ष न्यायमूर्ति बी. एस. चौहान द्वारा एक सवाल किया गया था कि संविधान के अनुच्छेद 371-ए, 371-बी, 371-सी जैसे प्रावधानों का क्या होगा, जो अलग-अलग क्षेत्रों के अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। न्यायमूर्ति चौहान द्वारा उठाये गये इस सवाल से उस बैठक में मौजूद विधि आयोग के दूसरे सदस्यगण भी सहमत-से दिख रहे थे और इसे समान नागरिक संहिता बनने की राह में बड़ी बाधा मान रहे थे। मैंने जवाब में न्यायमूर्ति चौहान से कहा कि संविधान के ये प्रावधान खुद ही इस समस्या का समाधान प्रदान करते हैं। संविधान के ये प्रावधान अपवाद के रूप में हैं। जिस तरह संविधान में अपवादों को स्वीकार किया गया है, उसी तरह समान नागरिक संहिता —भारतीय सिविल संहिता— में यथोचित अपवादों को स्वीकार किया जा सकता है। मेरे इस जवाब का विधि आयोग के अध्यक्ष और दूसरे अन्य सभी सदस्यों द्वारा कोई जवाब नहीं दिया जा सका और वे हमारे इस जवाब से पूरी तरह सन्तुष्ट दिखे।

धर्मनिरपेक्ष देश होने के बावजूद भारत में सिविल कानूनों को लेकर धर्म-आधारित भेदभाव क्यों बना रहना चाहिए और एक धर्मनिरपेक्ष स्वरूप वाले समान नागरिक संहिता का बनना क्यों सम्भव नहीं है, इसकी नकारात्मक पड़ताल करते विधि आयोग के परामर्श-पत्र के पहले अध्याय के कुल 35 पैराग्राफों में से 17 पैराग्राफ सिर्फ संविधान के छठी अनुसूची को केन्द्रित करके है। यद्यपि यह विधि आयोग जैसी संस्था के लिए ईमानदारी की बात थी कि वह 'मिशन आर्टिकिल 44' के प्रतिनिधि-मण्डल द्वारा दिये गये उपर्युक्त जवाब पर सन्तोषजनक तरीके से विचार करता और बताता कि समान नागरिक संहिता में अपवाद की व्यवस्था को क्यों नहीं अपनाया जा सकता है? आखिर विधि आयोग द्वारा स्वयं आगे बढ़कर देशवासियों से राय माँगी गयी थी। इसी के ही अनुक्रम में 'मिशन अनुच्छेद 44' द्वारा विधि आयोग के समक्ष अपना विचार दिया गया। सवाल उठता है कि यदि लोगों के राय पर विचार नहीं करना था, तो राय माँगी ही क्यों गयी थी? क्या सिर्फ दिखावा करने के लिए राय

माँगी गयी थी? कम-से-कम यह स्थान तो ऐसा था जहाँ डॉ. चौहान आयोग को अपवाद स्वीकार करने वाले तर्क को सही या गलत बताना चाहिए था।

किन्तु डॉ. चौहान आयोग के लिए नैतिकता का मापदण्ड बिलकुल अलग था। तभी तो उसे मेघालय के कुछ आदिवासी क्षेत्रों में लागू मातृसत्तात्मक व्यवस्था नैतिकता की मुख्यधारा वाले विचार से अलग दिखता है। उसे अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 1.33 में केवल पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही नैतिकता की मुख्यधारा वाला विचार समझ में आता है। जो संस्था इस सोच के साथ कार्य कर रही हो, उससे यह कैसे उम्मीद की जा सकती है कि वह निरपेक्ष बने रहकर राष्ट्रहित में कोई कार्य करेगा।

यही कारण है कि विधि आयोग यह विचार करने में विफल रहा है कि समान नागरिक संहिता की अवधारणा अलग-अलग धर्म-आधारित सिविल कानूनों को समाप्त करने को लेकर है और इस अवधारणा के अन्तर्गत आदिवासियों के हित को अपवाद के रूप में स्वीकार कर सुरक्षित किया जा सकता है और उसी तरह सुरक्षित किया जा सकता है, जिस तरह संविधान की छठी अनुसूची और अनुच्छेद 371-ए से 371-आई के अन्तर्गत किया गया है या जिस तरह सी.पी.सी. (सिविल प्रक्रिया संहिता) या सी.आर.पी.सी. (अपराध प्रक्रिया संहित) को लेकर स्वीकार किया गया है। मात्र आदिवासियों के हित के कारण हिन्दू का संविधान एवं सी.पी.सी. अलग और मुस्लिम या ईसाई का संविधान एवं सी.पी.सी. अलग नहीं है। किन्तु इन प्रावधानों में सकारात्मकता ढूँढ़ने के बजाय डॉ. चौहान आयोग द्वारा मात्र और मात्र नकारात्मकता ढूँढ़ने का प्रयास किया गया है, ताकि वह समान नागरिक संहिता के खिलाफ विचार को धार दे सके।

अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 1.23 में विधि आयोग यह विचार देता है कि 'जहाँ एक तरफ बदलाव के लिए निश्चित अभिलाषा है, वही समान नागरिक संहिता लागू करने के किसी प्रयास के अवरोध को स्वीकार करने की बराबर जरूरत है। औचित्य को लेकर पहला प्रत्याशित समस्या संविधान के छठी अनुसूची के सम्बन्ध में है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 371-ए से आई और छठी अनुसूची पारिवारिक कानूनों के सम्बन्ध में आसाम, नागालैण्ड, मिजोरम, आन्ध्र प्रदेश और गोवा राज्यों को कुछ सुरक्षा प्रदान करते हैं।' इस विचार को व्यक्त करने के साथ विधि आयोग अपने पैरा सं. 1.19 में कहता है कि 'ऐसे प्रावधान हैं, जो पारिवारिक मामलों में पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करते हैं, जिसे स्थानीय पंचायतों द्वारा अपनी प्रक्रिया अपनाकर स्वयं निर्णीत किया जाता है। इसलिए कानून का निर्माण करते समय इसे ध्यान में रखना

होगा और सांस्कृतिक विविधता के साथ इस सीमा तक समझौता नहीं किया जा सकता है कि एकरूपता के प्रति हमारा आग्रह स्वयं देश की क्षेत्रीय अखण्डता के लिए खतरे का कारण बन जाय।'

सम्भवत: यह पहला मौका है कि समान नागरिक संहिता को देश की क्षेत्रीय अखण्डता के लिए खतरा बताने का प्रयास किया गया है। डॉ. चौहान आयोग का यह परामर्श-पत्र इस बात के लिए अवश्य जाना जायेगा कि उसने पहली बार समान नागरिक संहिता को ऐसे नकारात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करने का दुर्भाग्यपूर्ण प्रयास किया है।

भारतीय संविधान की छठी अनुसूची आसाम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों के आदिवासी क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध में है। इस अनुसूची का खण्ड (3) इन राज्यों के जिला परिषद् एवं क्षेत्रीय परिषद् को कई मामलों में कानून बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं। जैसे उपखण्ड (क) भूमि उपयोग के सम्बन्ध में; उपखण्ड (ख) जंगल के प्रबन्धन के सम्बन्ध में; उपखण्ड (ग) जल कैनाल के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं। इसी तरह उपखण्ड (एच), (आई) और (जे) के प्रावधान इन परिषदों को क्रमश: उत्तराधिकार, विवाह एवं विवाह-विच्छेद और सामाजिक व्यवहार के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं। खण्ड (4) क्षेत्रीय परिषद् एवं जिला परिषद् को ग्राम परिषद् या न्यायालय का गठन करने की शक्ति प्रदान करता है और राज्यपाल की सहमति से इन ग्राम परिषदों एवं न्यायालयों द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया को निर्धारित करने की शक्ति प्रदान करता है। इसका खण्ड (5) राज्यपाल को कुछ मामलों में सी.पी.सी. एवं सी.आर.पी.सी. के प्रावधानों को लागू करने की शक्ति प्रदान करता है। इसके अलावा इन जिला परिषदों एवं क्षेत्रीय परिषदों को खण्ड (6) प्राथमिक विद्यालय स्थापित करने व संचालित करने के सम्बन्ध में; खण्ड (7) जिला एवं क्षेत्रीय फण्ड का गठन करने के सम्बन्ध में; खण्ड (8) भूमि राजस्व और कर इकट्ठा करने के सम्बन्ध में; खण्ड (9) खनिज निकासी के लिए लाइसेन्स या पट्टा प्रदान करने के सम्बन्ध में और खण्ड (10) गैर-आदिवासी द्वारा धन उधार लेने या व्यापार करने के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं।

इसी तरह अनुच्छेद 371-ए कहता है कि नागा के धार्मिक या सामाजिक व्यवहार के सम्बन्ध में या नागा के परम्परागत कानून एवं प्रक्रिया के सम्बन्ध में या सिविल या आपराधिक न्याय-प्रशासन के सम्बन्ध में या भूमि के अन्तरण के सम्बन्ध में संसद का कोई कानून नागा राज्य पर तब तक नहीं लागू होगा जब तक कि नागालैण्ड की

विधायिका प्रस्ताव न पारित करे। इसी तरह का कुछ प्रावधान मिजोरम राज्य के सम्बन्ध में अनुच्छेद 371-जी के अन्तर्गत है। अनुच्छेद 371-बी और 371-सी क्रमशः आसाम एवं मणिपुर राज्य में एक समिति के गठन के लिए राष्ट्रपाल (राष्ट्रपति) को शक्ति प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 371-डी और 371-ई आन्ध्र प्रदेश राज्य के लिए सिविल सेवा एवं प्रशासनिक न्यायाधिकरण और विश्वविद्यालयों के सन्दर्भ में क्रमशः राष्ट्रपाल (राष्ट्रपति) और संसद् को शक्ति प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 371-एफ सिक्किम राज्य के विधानसभा के गठन के सम्बन्ध में है। अनुच्छेद 371-एच अरुणांचल प्रदेश राज्य में कानून और व्यवस्था के लिए राज्यपाल के पास विशेष दायित्व होने की बात करता है। अनुच्छेद 371-आई भी गोवा राज्य के विधानसभा के गठन के सम्बन्ध में है।

अब डॉ. चौहान आयोग द्वारा जिस तरह से उक्त प्रावधानों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, वह किसी भी एक विवेकशील व्यक्ति के लिए आश्चर्य करने वाली बात है। उसने अपने परामर्श-पत्र के पैरा सं. 1.26 में अनुच्छेद 371-ए के एक खण्ड —खण्ड (क) का उल्लेख इस तरह किया है, जैसे यह अपने-आप में अनुच्छेद 371-ए का सम्पूर्ण प्रावधान हो। इसके बाद अगले पैरा सं. 1.27 में बिना कोई जिम्मेदारी के आँख मूँदकर यह कह दिया है कि 'अनुच्छेद 371-बी से अनुच्छेद 371-आई के प्रावधान पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों के लिए समान छूट प्रदान करते हैं।'

लगता है पैरा सं. 1.27 लिखते समय न्यायमूर्ति डॉ. चौहान और उनके विद्वान् साथियों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 371-बी से अनुच्छेद 371-आई को ठीक से पढ़ने की जिम्मेदारी नहीं उठाया गया। सभी तरह की सुख-सुविधा पाने वाले इन विद्वानों से पूछा ही जाना चाहिए कि जिस देश द्वारा आप लोगों पर लाखों-करोड़ों रुपये खर्च किया जाता है, उसके प्रति आप अपना इतना भी नैतिक दायित्व क्यों नहीं समझ सके कि कम-से-कम संविधान के प्रावधानों को सही ढंग से पढ़ लिया जाय? इस देश में कुछ तो जागरूक नागरिक हैं ही, जो चुप नहीं बैठे रह सकते हैं और सवाल पूछेंगे ही।

एक बात समझ के बाहर की है कि आखिर क्यों डॉ. चौहान आयोग इस बात को समझने में विफल रहा है कि छठी अनुसूची के माध्यम से जिला परिषद् एवं क्षेत्रीय परिषद् को किसी विषय पर कानून बनाने की अलग शक्ति दे देने मात्र से राष्ट्रीय फलक पर उस विषय पर कानून बनाये जाने की आवश्यकता समाप्त नहीं हो जाती है और न ही राष्ट्रीय फलक पर बनाये गये कानून इन परिषदों के कानून बनाने

की शक्ति पर कोई प्रभाव ही डालते हैं। इसे कुछ उदाहरणों के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं।

छठी अनुसूची का खण्ड (6) जिला परिषद् एवं क्षेत्रीय परिषद् को प्राथमिक विद्यालय की स्थापना एवं संचालन करने के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है, फिर भी संसद या राज्य विधायिका को इस सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति रहती है एवं ऐसी शक्ति का प्रयोग किया भी जाता है। इसी तरह खण्ड (8) इन परिषदों को भूमि राजस्व और कर इकट्ठा करने के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है, फिर भी संसद या राज्य विधायिका को इस सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति रहती है एवं ऐसी शक्ति का प्रयोग किया भी जाता है। इसी तरह यद्यपि छठी अनुसूची के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अन्तर्गत इन परिषदों को भूमि उपयोग के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति दी गयी है, फिर भी संसद या राज्य विधायिका को इस सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति रहती है एवं ऐसी शक्ति का प्रयोग किया भी जाता है। और इसलिए यदि उपखण्ड (एच) या (आई) या (जे) के अन्तर्गत इन परिषदों को उत्तराधिकार, विवाह, विवाह-विच्छेद एवं सामाजिक व्यवहार के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है, तो यह कैसे समझ लिया जाय कि संसद या राज्य विधायिका द्वारा इन विषयों पर कानून बना देने से परिषदों की शक्ति प्रभावित हो जाएगी।

अन्त में डॉ. चौहान आयोग द्वारा पैरा सं. 1.33 के अन्तर्गत यह विचार दिया है कि 'इसलिए धर्मनिरपेक्षता बहुलता से असंगत नहीं हो सकता है। यह केवल सांस्कृतिक अन्तर का शान्तिमय सह-अस्तित्व है।' और आगे पैरा सं. 1.35 में यह विचार दिया है कि 'इसलिए एक एकीकृत देश के लिए एकरूपता का होना आवश्यक नहीं है।' इस विचार के पूर्व पैरा सं. 1.34 में आयोग ने टी.एम.ए. पाई फाउण्डेशन के मामले का उल्लेख किया है, जिसमें सुप्रीम कोर्ट द्वारा विचार दिया गया है कि 'भारत में धर्मनिरपेक्षता का सार यह है कि विविध भाषा एवं अलग-अलग विश्वासों वाले तरह-तरह के लोगों को मान्यता देना एवं सुरक्षित करना है और उन्हें एक साथ रखना है ताकि एकीकृत भारत का निर्माण किया जाय।'

शायद विधि आयोग उस सन्दर्भ का संज्ञान नहीं ले पाया, जिसमें सुप्रीम कोर्ट द्वारा उक्त विचार को व्यक्त किया गया था। बावजूद इसके कि सन्दर्भ कुछ भी रहा हो, यदि डॉ. चौहान आयोग इस विचार के सन्दर्भ को समान नागरिक संहिता के साथ जोड़कर समझने का प्रयास किया होता तो शायद वह सुप्रीम कोर्ट के इस विचार को समान नागरिक संहिता के बहुत निकट पाता। समान नागरिक संहिता की भी यही

अवधारणा है कि विविध धार्मिक आस्था एवं विश्वासों को सुरक्षित किया जाय और उन्हें एक साथ रखा जाय ताकि एकीकृत भारत का निर्माण किया जा सके। एकसाथ रखने का विचार मात्र कहने-सुनने का दर्शन नहीं है, बल्कि यह ऐसा विचार है, जिसे व्यावहारिक रूप देने की आवश्यकता होती है। इसके लिए एकीकृत कानून एवं न्याय-प्रशासन सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी होता है और इसी एक कड़ी का महत्त्वपूर्ण भाग समान नागरिक संहिता है। धर्मनिरपेक्षता के सारतत्त्व और समान नागरिक संहिता की अवधारणा एक-दूसरे के पूरक हैं। इनमें कहीं से कोई अन्तर्विरोध नहीं है।

डॉ. चौहान आयोग द्वारा पैरा सं. 1.33 में यह विचार कि 'धर्मनिरपेक्षता बहुलता से असंगत नहीं हो सकता है' इसलिए दिया गया है ताकि धर्मनिरपेक्ष स्वरूप में बनने वाले समान नागरिक संहिता की अवधारणा कुन्द हो सके। जिस बहुलता को आयोग द्वारा समान नागरिक संहिता के लिए बाधा माना गया है, उसे हमारे संविधान-निर्माताओं द्वारा मैत्रीयता का स्रोत माना गया है। मैत्रीयता के इसी भाव को व्यक्त करते हुए श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने संविधान-सभा में कहा—

> '... दूसरी आपत्ति थी कि यदि एक यूनिफॉर्म सिविल संहिता बन जायेगी तो धर्म खतरे में होगा और समुदाय मैत्रीयता के साथ नहीं रह सकते हैं। इस अनुच्छेद का उद्देश्य ही मैत्रीयता लाना है। यह मैत्रीयता को समाप्त नहीं करता है। विचार यह है कि उत्तराधिकार या अन्य मामलों की पृथक् व्यवस्थाएँ ऐसी कारक हैं, जो भारत के तमाम लोगों में भिन्नता पैदा करती हैं। इसका उद्देश्य है कि ऐसे मामलों में एक समान सहमति तक पहुँचने का प्रयास करना है।
>
> '...जब ब्रिटिश देश की सत्ता पर काबिज हुए तो उन्होंने कहा कि हम इस देश में सभी नागरिकों, चाहे अंग्रेज हों या हिन्दू हों या मुस्लिम हों, पर समान रूप से लागू होनेवाले एक आपराधिक कानून को लागू करने जा रहे हैं। क्या तब मुस्लिम अपवाद बने रह पाये थे और क्या वे आपराधिक कानून की एक व्यवस्था को लागू करने के लिए ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ विद्रोह कर सके थे? इसी तरह हमारे पास संविदा कानून है, जो मुसलमान और हिन्दू के बीच या मुसलमान और मुसलमान के बीच होनेवाले अन्तरण पर लागू होते हैं। वे कुरान के कानून द्वारा नहीं बल्कि निरपवाद रूप से ऐंग्लो-इण्डियन विधिशास्त्र द्वारा संचालित होते हैं। इसी तरह अन्तरण के कानून में तमाम सिद्धान्त ऐसे हैं, जो इंग्लिश विधिशास्त्र से लिये गये हैं।...
>
> 'यूरोपीय देशों में मुस्लिम हैं, हिन्दू हैं, कैथोलिक हैं, ईसाई हैं, पारसी हैं। मैं

मि. पोकर से जानना चाहता हूँ कि क्या फ्रान्स में, जर्मनी में, इटली में या अन्य यूरोपीय देशों में भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत कानून बने रह पाये हैं? क्या वहाँ पर उत्तराधिकार के कानून एकीकृत नहीं हैं? उन्हें मुस्लिम विधिशास्त्र पर विस्तारपूर्वक अध्ययन करना चाहिए और पता करना चाहिए कि क्या इन देशों में एकसमान कानून लागू हैं या भिन्न-भिन्न कानून।...'

पैरा 1.35 में भी यह विचार दिया गया है कि 'एक एकीकृत देश के लिए एकरूपता का होना आवश्यक नहीं है।' डॉ. चौहान आयोग द्वारा यह विचार इसलिए दिया गया है ताकि धर्म-आधारित अलग-अलग व्यक्तिगत कानूनों का बचाव किया जा सके। जिस एकरूपता को डॉ. चौहान आयोग द्वारा अनावश्यक बताया गया, उसे संविधान-निर्माताओं ने पृथक्करणीय दृष्टिकोण को समाप्त करने के लिए सबसे आवश्यक बताया है। अनुच्छेद 44 पर बहस के दौरान श्री के. एम. मुन्शी द्वारा देशहित में जीवन के पृथक्करणीय दृष्टिकोण को भुलाने की और धर्मनिरपेक्ष भाग को विनियमित, एकीकृत और संशोधित करने की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा गया—

'... इसलिए विषय यह है कि क्या हम अपने व्यक्तिगत कानूनों को इस तरह एकीकृत और एकसमान करने जा रहे हैं जिससे कालक्रम में पूरे देश का जीवनपथ एक समान और धर्मनिरपेक्ष हो सके। हम धर्म को व्यक्तिगत कानूनों से, जिसे सामाजिक सम्बन्ध कहा जा सकता है या उत्तराधिकार या विरासत से सम्बन्धित पक्षकारों के अधिकारों से अलग करना चाहते हैं। इन सब चीजों का धर्म से क्या सम्बन्ध है। मैं वास्तव में नहीं समझ पाता हूँ। ... हम सब एक प्रगतिशील समाज हैं। हम सब इस दौर में हैं, जहाँ धार्मिक क्रियाकलापों में हस्तक्षेप किये बिना हमें देश को अवश्य ही एकीकृत करना चाहिए। यदि बीते दिनों में धार्मिक क्रियाकलाप ने जीवन के सभी क्षेत्रों को अपने दायरे में ले लिया है, हमें ऐसा करने से मना करने का निर्णय लेना पड़ेगा और कहना होगा कि ये मामले धार्मिक नहीं हैं, ये पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष कानून के विषय हैं। इसी बात पर यह अनुच्छेद बल देता है।

'... एक महत्त्वपूर्ण विचार जो हमें अपने दिमाग में रखना है और मैं अपने मुस्लिम मित्रों को अहसास कराना चाहता हूँ कि जितना ही जल्दी हम जीवन के पृथक्करणीय दृष्टिकोण को भूल जायेंगे, देश के लिए उतना ही अच्छा होगा। धर्म उस परिधि तक सीमित होना चाहिए जो नियमत: धर्म की तरह दिखता है और बाकी जीवन अवश्य ही इस तरह से विनियमित, एकीकृत और संशोधित

होना चाहिए कि हम जितनी जल्दी सम्भव हो, एक मजबूत एवं एकीकृत राष्ट्र के रूप में निखर सकें। देश में राष्ट्रीय एकता को मजबूत करना हमारी पहली समस्या और सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या है। हम सोचते हैं कि हमने राष्ट्रीय एकता पा लिया है। किन्तु बहुत-से ऐसे कारक हैं— महत्त्वपूर्ण कारक हैं, जो अभी भी हमारे राष्ट्रीय एकीकरण के लिए गम्भीर खतरा बने हुए हैं और यह बहुत आवश्यक है कि हमारे सम्पूर्ण जीवन, जो धर्मनिरपेक्षता के दायरे में आते हैं को अवश्य ही, जितना जल्दी हो सके, एकीकृत किया जाय ताकि हम पूरी क्षमता के साथ कह सकें कि हम केवल कहने के लिए एक राष्ट्र नहीं हैं बल्कि जिस तरह हम अपने एकीकृत व्यक्तिगत कानूनों द्वारा संचालित होते हैं हम एक मजबूत और एकीकृत राष्ट्र हैं।...'

विधि आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष न्यायमूर्ति बी. एस. चौहान द्वारा आदिवासी समाज के हित और समान नागरिक संहिता के मध्य टकराव होने को लेकर पूछे गये सवाल का जब 'मिशन आर्टिकल 44' द्वारा जवाब दिया जा रहा था, तो मेरे दिमाग में एक काउण्टर-विचार भी पैदा हुआ। काउण्टर विचार यह था कि समान नागरिक संहिता जैसे संवेदनशील विषय पर कार्य करनेवाली संस्थान में आदिवासियों का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए और न केवल आदिवासियों का, बल्कि महिलाओं एवं प्रभावित होनेवाले सभी धर्मों का सामाजिक एवं कानूनी प्रतिनिधित्व होना चाहिए। विधि आयोग में ऐसे प्रतिनिधित्व के नितान्त अभाव को दृष्टिगत रखने एवं दूसरे अन्य पहलुओं पर विचार करने के बाद एक 'भारतीय सिविल संहिता प्रारूप समिति' के गठन की प्रासंगिकता बढ़ जाती है, जिसमें सभी धार्मिक समुदायों एवं आदिवासी समुदायों का प्रतिनिधित्व हो। ऐसे प्रारूप-समिति का गठन करने के लिए संस्था लोक सर्वोदय फाउण्डेशन द्वारा नरेन्द्र मोदी सरकार से माँग भी किया गया है। उम्मीद है कि प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा समान नागरिक संहिता को गम्भीरता से लेते हुए उक्त माँग को स्वीकार किया जायेगा।

(साभार — अनूप बरनवाल 'देशबंधु' द्वारा लिखित पुस्तक 'समान नागरिक संहिता : चुनौतियाँ और समाधान: पृष्ठ संख्या 86-116 (लोकभारती प्रकाशन द्वारा प्रकाशित, वर्ष 2019 : कुल पृष्ठ संख्या 356) एवं पुस्तक 'भारतीय सिविल संहिता' के सिद्धान्त: अनुच्छेद 44 के क्रियान्वयन के अनुक्रम में'

परिशिष्ट - 1

17.09.2019

REPRESENTATION

To set aside the Report of the Law Commission dated 31.08.2018 and to constitute the 'Indian Civil Code Drafting Committee'

To,

The Hon'ble Prime Minister
Govt. of India, New Delhi

Sir,

In pursuance of soliciting the opinion on the issue of the uniform Civil Code by the Central government on 17 June 2016, the Law Commission made its report on 31 August 2018 after about two years. During the course a seven members delegation of Mission Article 44 : One Nation, One Civil Law also met with the Law Commission in favour of the uniform Civil Code on 10.01.2018.

Unfortunately the Law Commission concluded in Para no. 1.15 of its report that uniform Civil Code is neither necessary nor desirable at present. To reach this conclusion, the Law Commission has not only committed wrong on fact, but also went against its jurisdiction. This consultation paper of the Law Commission is an unfortunate step to make the provision of Article 44 a dead letter.

1. Conclusion on Consensus against Institutional sacredness...
2. Unrestrained Challenge to the existence of Constituent Assembly...
3. Misconceptions about Directive Principles...
4. Unjustified Remark on Supreme Court's Decision...
5. Unconstitutional view on freedom of religion and right of equality...
6. Unnecessary exercise on the equality within Community...
7. Unfair charges against other religions to defend Muslim law...
8. Dilemma on Personal Law...

9. Dilemma on Codification of the Muslim Law...
10. Unjustified Attack on the Hindu Undivided Family...
11. Irresponsible work on Sixth Schedule of the Constitution...
12. Unfortunate to call the UCC as dangerous to the Integrity...
13. Failure in understanding the Danger of Isolationist Outlook...

Appeal

Different civil laws for different religion encourage the isolationist outlook amongst the citizen. Uniform Civil Code is necessary to remove this kind of outlook and to strengthen the feeling of nationality in India.

It is, therefore, requested to officially deny and/or set aside the consultation report of the Law Commission dated 31.08.2018 to the extent it observe that uniform Civil Code is undesirable and unnecessary and constitute an 'Indian Civil Code Drafting Committee' to prepare the draft of the uniform Civil Code - Indian Civil Code in pursuance of enforcing Article 44 so that object of One Nation – One Civil Law could be achieved.

With Regard

(Anoop Baranwal)

(Nitya Prakash Tiwari)

(Satish Kumar Singh)

Copy also sent for information and necessary action

1. Shri Ravi Shankar Prasad, Minister of Law and Justice

परिशिष्ट - 2

Supreme Court's views on Law Commission Report

Law Commission's Report Against Uniform Civil Code Has A "Shaky" Foundation", Says Supreme Court While Refusing To Entertain Plea For UCC
livelaw.in : 30 Sept 2022

The Supreme Court bench comprising Chief Justice of India U.U. Lalit and Justice J.B. Pardiwala, on Friday, refused to entertain a petition seeking a Uniform Civil Code for India. However, the bench orally remarked that the report of the Law Commission of India which had stated that a Uniform Civil Code was undesirable was based on a judgement which had been twice doubted by the Supreme Court of India and hence had a "shaky" foundation.

For context, the Law Commission of India had taken up the examination of the viability of a Uniform Civil Code on the Centre's request to look into the issue in detail and submit a report. Through the report thus submitted, the Commission had highlighted the importance of recognition of differences that existed in the Indian society and opined that formulation of a Uniform Civil Code was neither necessary nor desirable at the given stage. It had also asserted that while several issues were brought up frequently in public debate, they could not be and need not be dealt with the law.

At the outset, the petitioner, Anoop Baranwal, who was appearing in person, submitted that while the Law Commission of India had stated that a Uniform Civil Code "was neither necessary nor desirable", its findings were largely based upon the judgment of the State Of Bombay v. Narasu Appa Mali (a 1951 decision which held that personal law is not "law" within the meaning of Article 13 and hence cannot be tested on ground of violating

fundamental rights). As per the petitioner, the said judgement required reconsideration as the Supreme Court had expressed its doubts upon the judgement on two different occasions. CJI Lalit also remarked that the case of Narasu Appa Mali was "old law". However, he stated–

> "You are asking for something which is in the nature of a writ of mandamus saying that a particular law be in acted in a particular fashion. To what extent can we utilise our writ jurisdiction and keep passing such kind of directions or writs? This petition is a very well researched document but sorry, we cannot grant you that relief."

CJI recognised that it was possible that the judgement of Narasu Appa Mali required reconsideration as it was doubted in two other judgements of the Supreme Court. However, he stated that the present petition did not raise the issue of the judgement in question being set aside. He remarked that–

> "The matter did not squarely arise where this issue could be gone into and said that Narasu Appa Mali shall stand or be set aside. We completely depart from that. As and when the matter comes up, it will be certainly considered. But today the kind of relief that you are asking for cannot be looked into. You are right in your research, the moment Law Commission goes in one direction and Narasu Appa Mali was doubted in two judgements by this court, whatever Law commission says in its report, the very foundation of that particular assumption or whatever has been found by the Law commission is completely shaky. But as and when the matter comes up before us we will certainly consider. We cannot look into this. Either you are withdrawing or we are dismissing."

Accordingly, the petition was dismissed as withdrawn.

CASE TITLE: Anoop Baranwal And Anr. v. UoI And Anr. WP(C) No. 1259/2021 PIL [PIP]

परिशिष्ट - 3

'मिशन् अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून'

संविधान निर्माताओं की मंशा थी कि लोगों की धार्मिक आजादी को बनाये रखते हुए धर्म आधारित अलग-अलग सिविल कानून के स्थान पर देश के लिए एक मानवता आधारित तार्किक धर्मनिरपेक्ष एवं लिंगनिरपेक्ष यूनिफार्म 'सिविल संहिता' बनाया जाय। इसके लिए संविधान में अनुच्छेद 44 का प्रावधान भी बनाया गया है।

अनुच्छेद 44 के बारे में संविधान-निर्माताओं के विचार

'व्यावहारिक रूप से इस देश में एक सिविल संहिता है, जिसके प्रावधान सर्वमान्य हैं और एक समान रूप से पूरे देश पर लागू हैं। जिस क्षेत्र में यूनिफॉर्म सिविल कानून लागू नहीं होता है, वह विवाह और उत्तराधिकार का क्षेत्र है। यह एक छोटा-सा क्षेत्र है जिस पर हम समान कानून नहीं बना सके हैं और यह इच्छा है कि अनुच्छेद 44 को संविधान का भाग बनाकर बदलाव लाना चाहते हैं।

'यह आवश्यक नहीं है कि कानून जैसे किरायेदारी के कानून या उत्तराधिकार के कानून, धर्म द्वारा संचालित हों। यूरोप में ईसाइयत है, लेकिन ईसाइयत का अर्थ यह नहीं होता है कि ईसाई पूरे विश्व या यूरोप में जहाँ भी रहते हैं, उत्तराधिकार के समान व्यवस्था रखेंगे। ऐसी किसी चीज का अस्तित्व नहीं होता है। मैं व्यक्तिगत रूप से नहीं समझता हूँ कि धर्म को इतना विस्तृत और व्यापक क्षेत्र क्यों दिया जाना चाहिए जो सम्पूर्ण जीवन पर कब्जा कर ले और विधायिका को इन क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने से रोके।

- डॉ. बी. आर. अंबेडकर (संविधान सभा में)

'हम सब एक प्रगतिशील समाज हैं। हम सब इस दौर में हैं, जहाँ धार्मिक क्रियाकलापों में हस्तक्षेप किये बिना हमें देश को अवश्य ही एकीकृत करना चाहिए। यदि बीते दिनों में धार्मिक क्रियाकलाप ने जीवन के सभी क्षेत्रों को अपने दायरे में ले लिया है, हमें ऐसा करने से मना करने का निर्णय लेना पड़ेगा और कहना होगा कि ये मामले धार्मिक नहीं हैं, ये पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष कानून के विषय हैं। इसी बात पर यह अनुच्छेद बल देता है। ... 'एक महत्त्वपूर्ण विचार जो हमें अपने दिमाग में रखना है और मैं अपने मुस्लिम मित्रों को अहसास कराना चाहता हूँ कि जितना ही

जल्दी हम जीवन के पृथक्करणीय दृष्टिकोण को भूल जायेंगे, देश के लिए उतना ही अच्छा होगा। धर्म उस परिधि तक सीमित होना चाहिए जो नियमत: धर्म की तरह दिखता है और बाकी जीवन अवश्य ही इस तरह से विनियमित, एकीकृत और संशोधित होना चाहिए कि हम, जितनी जल्दी सम्भव हो, एक मजबूत एवं एकीकृत राष्ट्र के रूप में निखर सकें।'...

- श्री के. एम. मुन्शी (संविधान सभा में)

'दूसरी आपत्ति थी कि यदि एक यूनिफॉर्म सिविल संहिता बन जायेगा तो धर्म खतरे में होगा और समुदाय मैत्रियता के साथ नहीं रह सकते हैं। इस अनुच्छेद का उद्देश्य ही मैत्रीयता लाना है। यह मैत्रीयता को समाप्त नहीं करता है। विचार यह है कि उत्तराधिकार या अन्य मामलों के पृथक व्यवस्थायें ऐसे कारक हैं, जो भारत के तमाम लोगों में भिन्नता पैदा करता है। इसका उद्देश्य है कि ऐसे मामलों में एक समान सहमति तक पहुँचने का प्रयास करना है।

'...जब ब्रिटिश देश की सत्ता पर काबिज हुए तो उन्होंने कहा कि हम इस देश में सभी नागरिकों, चाहे अंग्रेज हों या हिन्दू हों या मुस्लिम हों, पर समान रूप से लागू होने वाले एक आपराधिक कानून को लागू करने जा रहे हैं। क्या तब मुस्लिम अपवाद बने रह पाये थे और क्या वे आपराधिक कानून की एक व्यवस्था को लागू करने के लिए ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ विद्रोह कर सके थे?

इसी तरह हमारे पास संविदा कानून है, जो मुसलमान और हिन्दू के बीच या मुसलमान और मुसलमान के बीच होने वाले अन्तरण पर लागू होता है। वे कुरान के कानून द्वारा नहीं बल्कि निरपवाद रूप से एंग्लो-इण्डियन विधिशास्त्र द्वारा संचालित होते हैं। ...

- श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर (संविधान सभा में)

अनुच्छेद 44 के बारे में सुप्रीम कोर्ट के विचार

यह भी दु:ख का विषय है कि हमारे संविधान का अनुच्छेद 44 मृत अक्षर बनकर रह गया है। ... समान नागरिक संहिता को बनाने के लिए राज्य स्तर पर प्रयास किये जाने का कोई साक्ष्य नहीं है। ... समान नागरिक संहिता विरोधाभासी विचारों वाले कानूनों के प्रति पृथक्करणीय भक्तिभाव को समाप्त कर राष्ट्रीय अखण्डता के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहयोग करेगा।

– न्यायमूर्ति वाई. वी. चन्द्रचूड़ (शाहबानो बेगम के मामले में, 1985)

यह मामला भी ऐसा ही है जो एक समान नागरिक संहिता की आवश्यकता को तुरन्त और बाध्यकारी करने पर ध्यान आकर्षित कराता है। राज्य के पूर्णतया असन्तोषजनक कदम के कारण समान नागरिक संहिता का अभाव इस मामले के तथ्यों से प्रकट हो जाता है। ... हम सुझाव देते हैं कि अब ऐसे मामलों में विवाह और विवाह-विच्छेद हेतु समान नागरिक संहिता बनाने और ऐसी अप्रसन्न परिस्थिति से निजात दिलाने के लिए विधायिका द्वारा कानून बनाकर हस्तक्षेप करने का समय आ गया है।

– न्यायमूर्ति ओ. चिनप्पा रेड्डी (मिस जॉर्डान डेंगडेह के मामले में, 1985)

यह एक आश्चर्य है कि संविधान के अनुच्छेद 44 के अन्तर्गत व्यक्त की गयी संविधान-निर्माताओं की इच्छा को पूरा करने में यह सरकार और कितना समय लेगी। उत्तराधिकार और विवाह को संचालित करने वाले परम्परागत हिन्दू कानून को बहुत पहले ही 1955-56 में संहिताकरण करके अलविदा कर दिया गया है। देश में यूनिफॉर्म सिविल संहिता को अनिश्चित काल के लिए विलम्बित करने का कोई औचित्य नहीं है।

– न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह (सरला मुद्गल के मामले में, 1995)

धार्मिक प्रथाएँ मानवाधिकार एवं गरिमा का अतिक्रमण करते हैं। धर्म के नाम पर सिविल एवं भौतिक आजादी का गला घोटना स्वराज्य नहीं बल्कि निर्दयता है। इसलिए यूनिफॉइड संहिता का होना निर्दयता से सुरक्षा प्रदान करने और राष्ट्रीय एकता एवं सौहार्द को प्रोत्साहित करने के लिए बाध्यकारी है।

– न्यायमूर्ति आर. एम. सहाय (सरला मुद्गल के मामले में, 1995)

यह एक दु:ख की बात है कि संविधान के अनुच्छेद 44 को आज तक लागू नहीं किया जा सका है। संसद् को अभी भी देश में कॉमन सिविल संहिता का निर्माण करने के लिए कदम उठाना है। कॉमन सिविल संहिता वैचारिक मतभेदों को दूर कर राष्ट्रीय अखण्डता को हासिल करने में सहायक होगा।

– न्यायमूर्ति वी. एन. खरे (जॉन वलामत्तम के मामले में, 2003)

अनुच्छेद 44 के बारे में विद्वानों के विचार

'एक ही विषय पर हिन्दू के लिए एक कानून, मुस्लिम और ईसाई के लिए के लिए अलग-अलग कानून धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतान्त्रिक मूल्यों के खिलाफ और देश की एकता व अखण्डता के लिए खतरनाक हैं।

- राम मनोहर लोहिया (समान नागरिक संहिता पर अभियान के दौरान)

'मेरी समझ में नहीं आ रहा है, जब संविधान के निर्माताओं ने शादी विवाह के लिए एक कानून बनाने की सिफारिश की है और यह कहा है कि राज्य इसकी तरफ ध्यान देगा तो क्या वे साम्प्रदायिक कारणों से प्रेरित थे, क्या ये साम्प्रदायिक मुद्दा है? क्रिमिनल लॉ एक है। सिविल लॉ क्यों नहीं एक हो सकता है? गोवा में अभी भी सिविल लॉ एक है।'

– अटल विहारी बाजपेयी, पूर्व प्रधानमन्त्री

'यदि आप न्यायालय से शरीयत को मानने के अपने अधिकार को सुरक्षित करना चाहते हैं, तो न्यायालय को देखना पड़ेगा कि किसे सुरक्षित कराने की माँग की जा रही है। समान नागरिक संहिता के लिए आगे बढ़ें। हिन्दू धर्म के पास विवाह-विच्छेद या सम्पत्ति-अधिकार के सम्बन्ध में प्रावधान नहीं थे, किन्तु उन्होंने इसे इस्लामिक प्रथाओं से हासिल किया। वे दूसरे धर्मों के नुस्खों से लाभान्वित हुए।'

– मोहम्मद आरिफ खॉन, राजनीतिक विचारक

'अपनी परम्परागत व्यक्तिगत कानून के लिए 'छूट' पाने हेतु राज्य विधायिका के क्षेत्राधिकार से सुरक्षित किये जाने के लिए धार्मिक और राजनीतिक दबाव का प्रयास करने में उर्जा खर्च करने के बजाय मुसलमान इसका आविष्कार एवं प्रदर्शन करके और अच्छा कर पायेगा कि कालदोषयुक्त एवं घिसी-पिटी व्याख्या से दोषमार्जित सच्चा इस्लामिक कानून कैसे भारत में समान नागरिक संहिता को और ज्यादा मूल्यवान् बना सकता है।'

– डॉ. ताहिर महमूद (मुस्लिम पर्सनल लॉ पृष्ठ सं० 200)

भारत में विद्यमान धर्म-आधारित अलग-अलग व्यक्तिगत कानून, इस देश के धर्म-आधारित विभाजन के बुझ चुके आग में सुलगते धुआँ की तरह हैं, जो कभी भी विस्फोटक होकर देश की एकता को खण्डित कर सकते हैं। इसलिए इन्हें समाप्त कर समान नागरिक संहिता बनाना न केवल देश की धर्म-निरपेक्षता को बनाए रखने के लिए, बल्कि इसकी एकता व अखण्डता के लिए अतिआवश्यक है।'

– (पुस्तक 'समान नागरिक संहिता : चुनौतियाँ और समाधान केरास्ते' से)

परिशिष्ट – 4
समान नागरिक संहिता – 'भारतीय सिविल संहिता' बनने से होने वाले प्रमुख सुधार एवं लाभ

1. कानून को लेकर धर्म आधारित पृथक्करणीय भाव समाप्त होगा और भारतीयता का भाव मजबूत होगा।
2. व्यक्ति, परिवार, राष्ट्रीयता एवं सम्पत्ति से जुड़े सैकड़ों जटिल सिविल कानूनों से देश मुक्त होगा।
3. ज्यादातर ब्रिटिश हुकूमत के दौर के निर्मित ये कानून कानूनी-गुलामी के प्रतीक हैं, जिनसे दीर्घ अवधि तक विनियमित होते रहने के कारण हम हीनभावनाग्रस्त रहते हैं। समान नागरिक संहिता बनने से हम गर्व के साथ कह सकेंगे कि अंग्रेजों, तुमसे यह देश न केवल राजनीतिक स्वराज प्राप्त कर लिया है, बल्कि कानूनी स्वराज भी प्राप्त कर लिया है।
4. अलग-अलग धर्म-आधारित व्यक्तिगत कानूनों की अस्पष्टता और इनके मध्य अन्तर्विरोधों के कारण कई तरह के अनावश्यक विवाद पैदा होते हैं। इन अनावश्यक विवादों के कारण न्यायालय के कीमती समय और करोड़ों-अरबों रुपये खर्च होते हैं। समान नागरिक संहिता बनाकर देश को इन अनावश्यक खर्च से बचाया जा सकेगा।
5. सभी भारतीयों के लिए, चाहे वे किसी धर्म को मानने वाले हों या किसी लिंग के हों, वैवाहिक दायित्व, विवाह विच्छेद, उत्तराधिकार, वसीयत, दान, धर्मजत्व, संरक्षकत्त्व, बँटवारा, गोद, इत्यादि, जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है, के सम्बन्ध में एक समान नियम लागू होंगे।
6. कुछ अपवादों को छोड़कर 'एक पति-एक पत्नी' की अवधारणा सभी भारतीयों पर एक समान रूप से लागू होगा। अपवादों का लाभ भी सभी भारतीयों, चाहे वह पुरुष हो या महिला; चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान या ईसाई या पारसी या सिख, को एक समान रूप से मिल सकेगा।
7. सभी भारतीयों, चाहे वह किसी लिंग का हो या किसी धर्म को माननेवाला हो, के लिए विवाह हेतु न्यूनतम उम्र एक समान '18 वर्ष' हो सकेगा।
8. न्यायालय के माध्यम से विवाह-विच्छेद कराना सामान्य नियम होगा। किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में कुछ तार्किक सीमाओं के साथ मौखिक तरीके से विवाह-विच्छेद करने की आजादी सभी भारतीयों, चाहे वह किसी लिंग का हो या किसी धर्म का अनुयायी हो, को एक समान रूप से मिल सकेगा।

9. सभी भारतीयों, चाहे वह किसी धर्म का हो, के सन्दर्भ में पैतृक सम्पत्ति में पुत्र एवं पुत्री को समान अधिकार देने की व्यवस्था लागू होगा।
10. देश में पहली बार होगा कि विवाह-विच्छेद की स्थिति होने पर महिलाओं को, चाहे वह किसी धर्म की माननेवाली हों, को विवाह पश्चात् अर्जित दाम्पत्य सम्पत्ति में सापेक्षिक समान अधिकार मिल सकेगा।
11. देश में पहली बार 'राष्ट्रीयता' एवं इससे जुड़े विषयों पर एक समग्र एवं एकीकृत कानून लागू होगा।

उक्त सुधारों के लागू होने से मूलभूत धार्मिक अधिकारों यथा — पूजा /नमाज/ प्रार्थना करने या हज/दर्शन करने जाने या रोजा/व्रत रखने या मन्दिर/मस्जिद/चर्च/ गुरूद्वारा का प्रबन्धन करने या संविधान प्रदत्त धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के अधिकार में या विवाह/निकाह के लिए कोई भी पद्धति अपनाने या मृत्यु उपरान्त अंतिम संस्कार के लिए कोई भी तरीका अपनाने में — किसी तरह की कोई बाधा या हस्तक्षेप नहीं होगा।

साभार - अनूप बरनवाल 'देशबंधु' द्वारा लिखित पुस्तक 'समान नागरिक संहिता : चुनौतियाँ और समाधान (लोकभारती प्रकाशन द्वारा प्रकाशित, वर्ष 2019)

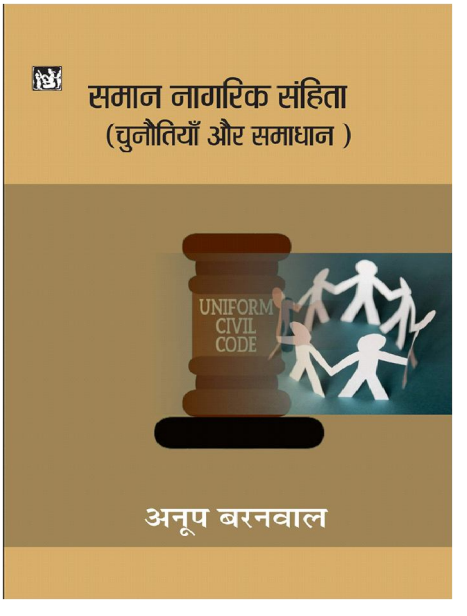

परिशिष्ट - 5

'मिशन् अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून' के माध्यम से संस्था - लोक सर्वोदय फाउण्डेशन् द्वारा किये जा रहे प्रयास

- **21 मार्च, 2017 -** विश्व के तमाम आधुनिक सिविल संहिताओं तथा भारत में लागू सभी व्यक्तिगत कानूनों एवं सिविल कानूनों का अध्ययन कर शोध पुस्तक - **'भारतीय सिविल संहिता के सिद्धान्त: अनुच्छेद 44 के क्रियान्वयन के अनुक्रम में'** की रचना की गयी। श्री अनूप बरनवाल द्वारा लिखित इस पुस्तक में व्यक्ति, राष्ट्रीयता, परिवार, सम्पत्ति एवं दायित्त्व से सम्बन्धित कानूनों का विश्लेषण किया गया है। इस पुस्तक के माध्यम से **21 सूत्रीय ब्लूप्रिन्ट** सुझाया गया है, जिसकी सहायता से सर्वसहमति से देश के लिए समान नागरिक संहिता बनाया जा सकता है। पुस्तक का प्राक्कथन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल **श्री राम नाईक** द्वारा लिखा गया।
- **19 सितम्बर, 2017 -** यूनिफार्म सिविल संहिता पर लिखी गयी उक्त पुस्तक का विमोचन **न्यायमूर्ति अरूण टण्डन** द्वारा देश के जाने माने कानूनविदों, शिक्षाविदों एवं पत्रकारों की उपस्थिति में किया गया।
- **01 अक्टूबर, 2017 -** यह 23 नवम्बर, 1948 की तिथि थी, जब संविधान सभा द्वारा अनुच्छेद **44** का प्रावधान सर्वसम्मति से पारित किया गया। इस तिथि को मिशन आर्टिकल **44** द्वारा **'यूनिफार्म सिविल संहिता संकल्प दिवस'** के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया।
- **23 नवम्बर, 2017 -** देश के इतिहास में पहली बार इस तिथि को मिशन द्वारा **'यूनिफार्म सिविल संहिता संकल्प दिवस'** के रूप में मनाया गया।

  इस अवसर पर मिशन द्वारा आयोजित कार्यक्रम में 'यूनिफार्म सिविल संहिता : लैगिक न्याय एवं समानता' विषय पर संगोष्ठी भी की गयी। संगोष्ठी की **मुख्य अतिथि न्यायमूर्ति विजय लक्ष्मी**; अध्यक्ष इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. राजेन्द्र प्रसाद; विशिष्ट अतिथि इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय के विधि विभाग के अध्यक्ष श्री सिद्धनाथ और वक्तागण श्री धर्मपाल सिंह, श्री अशोक मेहता, श्री पीके जैन, श्री एस.एफ.ए. नकवी, श्री डी. आर. चौधरी इत्यादि थे। कार्यक्रम का सह-आयोजकत्त्व

इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय; विधि विभाग–इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय एवं इलाहाबाद हाईकोर्ट एड्वोकेट एसोसिएशन द्वारा और संयोजकत्व श्रीमती सुभाष राठी द्वारा किया गया।

- **09 जनवरी, 2018 –** संस्था की तरफ से सात सदस्यीय शिष्टमण्डल **भारत के विधि आयोग** से मिलकर उन बिन्दुओं पर चर्चा की, जिसके आधार पर देश के लिए समान नागरिक संहिता — भारतीय सिविल संहिता बनायी जा सकता है। विधि आयोग को मेमोरेण्डम व शोध–पुस्तक भी दिया गया।

  विधि आयोग के साथ यह बैठक आयोग के चेयरमैन जस्टिस बी.एस. चौहान द्वारा 5 दिसम्बर, 2017 को दिये गये उस बयान के परिप्रेक्ष्य में था, जिसमें कहा गया था कि इस देश में समान नागरिक संहिता लागू करना सम्भव नहीं है और आयोग व्यक्तिगत कानूनों में सुधार के लिए संस्तुति करेगा, क्योंकि इन व्यक्तिगत कानूनों को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है। शिष्टमण्डल द्वारा आयोग को बताया गया कि भारत में कैसे व्यक्तिगत कानूनों को कभी भी संवैधानिक संरक्षण प्राप्त नहीं रहा है।

- **18 जनवरी, 2018 –** संस्था द्वारा भारत सरकार से एक '**भारतीय सिविल संहिता प्रारूप समिति**' का गठन करने की माँग की गयी, जिसमें देश के सभी धर्मों, आदिवासी क्षेत्रों एवं महिलाओं के ऐसे सामाजिक–कानूनी प्रतिनिधि शामिल हों, जो भारतीय सिविल संहिता के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध हों।

- **31 जनवरी, 2018 –** संस्था द्वारा भारत सरकार द्वारा लाए गए **तीन तलाक विधेयक, 2017** पर आपत्ति–पत्र प्रस्तुत किया गया। पत्र के माध्यम से माँग किया गया है कि तीन–तलाक के साथ–साथ मुस्लिम कानून में अनुमन्य अन्य सभी मौखिक तलाक के तरीकों को समाप्त किया जाय। किसी भी स्वरूप में मौखिक विवाह–विच्छेद को मान्य किये जाने की स्थिति में इस अधिकार को सभी भारतीयों, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान या ईसाई या सिख या पारसी या चाहे पुरूष हो या महिला, को समान रूप से दिया जाय तथा इसके साथ ऐसे उपाय किया जाय ताकि मौखिक विवाह–विच्छेद का दुरुपयोग नहीं किया जा सके।

- **8 मार्च, 2018 –** 'भारतीय सिविल संहिता प्रारूप समिति' के गठन की माँग वाले संस्था के माँगपत्र पर सरकार द्वारा क्या कार्यवाही पर की गयी है, इसकी जानकारी के लिए संस्था द्वारा आर.टी.आई. के अर्न्तगत आवेदन भेजा गया।

- **24 मई, 2018 –** 'संविधान-सभा का विचार और यूनिफॉर्म सिविल संहिता की बढ़ती प्रासंगिकता' विषय पर सेमिनार का आयोजन किया गया। सेमिनार के **मुख्य अतिथि न्यायमूर्ति आर.एस. मौर्या**; मुख्य वक्ता बी.एच.यू. के पूर्व कुलपति प्रो. जी. सी. त्रिपाठी एवं विशिष्ट वक्ता प्रसिद्ध अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार जी थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री आर.के. ओझा, सीनि. एड्वोकेट एवं सह-आयोजकत्त्व हाईकोर्ट बार एसोसिएशन द्वारा किया गया।
- **09 जुलाई, 2018 –** संस्था के कार्यकारिणी समिति – राष्ट्रीय स्वराज परिषद् द्वारा 'मिशन् अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून' को आगे बढ़ाने के लिए **'संरक्षक मण्डल', 'मार्गदर्शन मण्डल', 'सलाहकार परिषद'** एवं **'धर्म समन्वय समिति'** का गठन करने का प्रस्ताव पारित किया गया।
- **16 अगस्त, 2018 –** आल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड द्वारा देशभर में शरीया अदालतों का गठन करने की घोषणा के खिलाफ आपत्ति पत्र भेजा गया। इस आपत्ति के माध्यम से गाइडलाइन जारी करने की मांग की गयी, ताकि मुस्लिम बोर्ड जैसी धर्म आधारित निजी संस्थाएं 'अदालत' शब्द का प्रयोग न कर सके और इन संस्थाओं को सीपीसी की धारा 89 के अधीन रहकर स्वयं को केवल स्वैच्छिक सुलह-समझौता केन्द्र के रूप में प्रचारित करने की छूट प्राप्त हो।
- **02 सितम्बर, 2018 -** मिशन आर्टिकल 44 द्वारा बैठक कर विधि आयोग के उस परामर्श-रिपोर्ट दिनांक 31 अगस्त, 2018 का विरोध किया गया, जिसमें यह कहा गया है कि देश के लिए समान नागरिक संहिता की आवश्यकता नहीं है। यह भी तय किया गया कि विधि आयोग के उस परामर्श-रिपोर्ट पर मिशन द्वारा समीक्षा-पुस्तक जारी किया जायेगा।
- **23 नवम्बर, 2018 -** 'समान नागरिक संहिता संकल्प दिवस' के अवसर पर विधि आयोग के परामर्श-रिपोर्ट दिनांक 31 अगस्त, 2018 पर समीक्षा पुस्तक 'समान नागरिक संहिता पर विधि आयोग की नकारात्मकता' का हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में लोकार्पण किया गया।
- **24 दिसम्बर, 2018 -** विधि आयोग के परामर्श-रिपोर्ट दिनांक 31 अगस्त, 2018 के खिलाफ मिशन आर्टिकल 44 द्वारा आपत्ति दाखिल किया गया।

— राष्ट्रीय स्वराज परिषद

परिशिष्ट - 6

मौलाना मदनी जी से 'समान नागरिक संहिता' पर पूछे गए 13 सवाल

सेवा में

मौलाना महमूद मदनी

अध्यक्ष - जमीअत उलमा-ए-हिन्द

महोदय,

29 मई, 2022 को आप द्वारा समान नागरिक संहिता के विरोध में व्यक्त किया गया विचार सामने आया है। आपने कहा है कि विवाह, तलाक/खुल्ला, विरासत जैसे विषय इस्लाम का उसी तरह हिस्सा हैं, जैसे नमाज, रोजा और हज हैं, जो कुरान एवं हदीश से संचालित होते हैं। यह पूरी तरह भ्रमित करने वाला बयान है। इसे लेकर कोई विवाद नहीं है कि नमाज, रोजा, हज जैसे विषय धार्मिक आस्था के विषय हैं और धार्मिक आस्था के इन विषयों का संचालन कुरान, वेद/उपनिषद/गीता, बाइबिल, गुरु ग्रन्थ साहिब जैसे धर्मग्रंथों द्वारा होता है। धार्मिक रीति-रिवाज के अनुसार विवाह सम्पन्न कराने को लेकर भी कोई विवाद नहीं है। इसकी गारण्टी खुद हमारा संविधान देता है।

धार्मिक अधिकारों की गारण्टी देने के साथ एक धर्म-निरपेक्ष देश के लिए यह भी आवश्यक है कि सिविल अधिकारों एवं अपराध न्याय को लेकर नागरिकों के मध्य धर्म के आधार पर भेदभाव न किया जाय। यही कारण है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने समान नागरिक संहिता बनाकर लागू करना राज्य का संवैधानिक दायित्व घोषित किया है। किन्तु आप जैसे कुछ लोगों के विरोध के कारण यह देश धर्म-निरपेक्षता को लेकर दोराहे पर खड़ा रहता है।

समान नागरिक संहिता का विरोध करके आप जैसे लोग जो कुछ हासिल करना चाहते हैं, वह मात्र यही है कि एक मुस्लिम पति को एकसाथ चार-चार शादी करने की, 15 वर्ष के उम्र की लड़कियों से शादी करने की, मनमाना तरीके से मौखिक तलाक कहने की छूट मिलता रहे और मुस्लिम महिलाओं को विरासत में समान अधिकार न मिल पाये।

उन्नीस वर्ष पूर्व 2003 में सुप्रीम कोर्ट ने जॉन वलामत्तम के मामले में जब यह कह दिया है कि विवाह, उत्तराधिकार जैसे विषय धर्म-निरपेक्ष चरित्र वाले विषय हैं, आप जैसे कुछ लोग भ्रम फैलाकर भारतीयों को भारतीय नहीं, बल्कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी के खांचे में बांटे रखना चाहते हैं। इसलिए आपसे कुछ सवाल पूछा जाना ही चाहिए। उम्मीद है कि आपके पास पूछे जा रहे निम्न तेरह सवालों का जवाब होगा और आप द्वारा इनका जवाब अवश्य दिया जाएगा।

1. टर्की जैसे मुस्लिम देश ने 1926 में ही विवाह, विवाह-विच्छेद, विरासत सहित सभी सिविल अधिकारों को धर्म एवं धार्मिक अधिकार से अलग करके समान नागरिक संहिता (टर्की सिविल संहिता) बनाया और लागू कर दिया, तो क्या वहां के मुसलमान कुरान या हदीश के विरुद्ध हैं?
2. टर्की जैसे मुस्लिम देश में एक मुस्लिम पति एक बार केवल एक शादी कर सकता है; वहां तलाक/खुल्ला के माध्यम से नहीं, बल्कि न्यायालय की डिक्री के माध्यम से ही विवाह-विच्छेद किया जा सकता है; वहां बेटियों को बेटों के समान सम्पत्ति मे अधिकार प्राप्त है। ये सब व्यवस्था मानवता एवं सभ्य समाज के अनुकूल हैं। तो क्या टर्की इन व्यवस्थाओं को स्वीकार करके शरीयत के खिलाफ कार्य किया है?
3. आप जैसे लोग यह क्यों नहीं मान पाते हैं कि एक पत्नी के रहते दूसरी पत्नी रखने की छूट देना उसी तरह अमानवीय है, जैसे एक पत्नी को इस तरह की छूट नहीं दिया गया है?
4. जब पाकिस्तान जैसा मुस्लिम देश, मुस्लिम परिवार कानून, 1961 की धारा 6 के अन्तर्गत यह व्यवस्था अपनाया है कि कोई मुस्लिम पति, बिना आर्बिट्रेशन काउन्सिल की अनुमति और पहली पत्नी की सहमति के दूसरी शादी नहीं कर सकता है, तो क्या पाकिस्तान के मुसलमान कुरान या हदीश की अवज्ञा कर रहे हैं। समय के साथ यदि पाकिस्तान के मुसलमानों ने सुधार स्वीकार किया है, तो भारतीय मुसलमानों को सुधारवादी क्यों नहीं होना चाहिए?
5. आप जैसे लोग जब मुस्लिम पति को मौखिक तलाक की छूट देने की वकालत करते हैं, तो इसका यह संदेश जाता है कि आप लोगों को भारत के न्यायालयों पर भरोसा नहीं है। आप यह क्यों नहीं मानते है कि पत्नी से वैवाहिक संबंध तोड़ने के लिए तार्किक आधार बताया जाना आवश्यक होना चाहिए और इसे

सिद्ध करने के लिए भारतीय न्यायालय पर भरोसा करना चाहिए?

6. देश के बाकी धर्म के लोग विवाह-विच्छेद को लेकर न्यायालय प्रक्रिया में भरोसा कर रहे हैं, ताकि अराजकता न पैदा हो, तो इसके खिलाफ आप मौखिक तरीके वाले तलाक — तलाक-ए-हसन या तलाक-ए-अहसन क्यों चाहते हैं? विवाह-विच्छेद के लिए न्यायालय की पारदर्शी व्यवस्था से आपको क्या और क्यों परेशानी हैं?

7. पाकिस्तान जैसे इस्लामिक देश में मौखिक तलाक की व्यवस्था उस तरह नहीं मान्य है, जिस तरह भारत में मुस्लिम पति द्वारा मनमाने तरीके से उपयोग किया जाता है। पाकिस्तान में यदि एक मुस्लिम पति द्वारा तलाक कहा गया है, तो इसकी सूचना आर्बिट्रेशन को देना पड़ता है। इसके तीन महीने बाद ही तलाक मान्य हो सकता है, वह भी तब जब समझौते का प्रयास विफल हो जाये। ऐसा इसलिए है, ताकि कोई पति झूठ न बोल सके कि उसने तीन महीना पहले तलाक बोल दिया है और तीन महीना प्रतीक्षा का समय पूरा हो गया है। भारत में तलाक-ए-हसन या तलाक-ए-अहसन के लिए लिखित रिकार्ड की कोई निष्पक्ष व्यवस्था नहीं है। इसके कारण इसका दुरुपयोग करने का हमेशा अवसर रहता है। भारत में मौखिक तलाक के संबंध में ऐसी पारदर्शी व्यवस्था लागू होना चाहिए या नहीं? यदि लागू होना चाहिए, तो इसके लिए आप जैसे व्यक्ति द्वारा आज तक क्या पहल किया गया है?

8. तलाक-उल-बिद्दत को लेकर भारत में निचली अदालत से लेकर हाईकोर्ट एवं सुप्रीम कोर्ट में हजारों-हजार मुकदमें दाखिल हुए और इनके कारण न्यायालय के न जाने कितने मूल्यवान समय और धन बर्बाद हुए हैं। अन्ततः सुप्रीम कोर्ट ने तलाक-उल-बिद्दत असंवैधानिक घोषित कर दिया है। इनके कारण देश को हुए नुकसान की नैतिक जिम्मेदारी लेने का साहस क्या आप जैसे व्यक्ति में है, जो सिविल अधिकारों के विषय में भी पर्सनल लॉ लागू करने की वकालत करता है?

9. अभी कुछ दिन पूर्व तलाक के दूसरे तरीके तलाक-ए-हसन को भी सुप्रीम कोर्ट के समक्ष चुनौती दी गई है। इस तरह मुस्लिम पर्सनल लॉ के कारण भारत के न्याय-प्रशासन के समक्ष पैदा हो रही समस्या की जिम्मेदारी किसे लेनी चाहिए?

10. आपने अपने बयान में खुल्ला का भी उल्लेख किया है। खुल्ला का मतलब पत्नी द्वारा लिया जाने वाला मौखिक विवाह-विच्छेद है। इसके अन्तर्गत पत्नी प्रतिफल का भुगतान करके विवाह विच्छेद का प्रस्ताव कर सकती है और जब इसे पति द्वारा स्वीकार कर लिया जाय, तो विवाह-विच्छेद मान लिया जाता है। इसका अर्थ है कि यदि पत्नी पर्याप्त प्रतिफल का भुगतान नहीं कर पाती है या पति खुल्ला को नहीं स्वीकार करता है, तो पत्नी मौखिक विवाह-विच्छेद नहीं कर सकती है। सवाल यह है कि खुल्ला की जो व्यवस्था पत्नी के लिए है, वैसी ही व्यवस्था पति के तलाक के लिए क्यों नहीं है? यह भेदभाव वाली व्यवस्था क्यों स्वीकरणीय है?

9. कृषि भूमि की संपत्ति के संबंध में जब धर्म-निरपेक्ष कानून लागू है और यह कानून सभी भारतीयों पर बिना किसी धर्म-आधारित भेदभाव के लागू होता है और इसको लेकर आप जैसे व्यक्ति को समस्या नहीं है, तो शेष संपत्ति की विरासत के कानून को लेकर आप भारतीयों के मध्य धर्म के नाम पर भेदभाव क्यों बनाये रखना चाहते हैं?

10. विरासत के संबंध में जब टर्की जैसे मुस्लिम देश ने बेटियों को बेटों के समान बराबरी का हक दिया है, तो भारतीय मुसलमानों पर इसे लागू करने में आपको क्यों परेशानी है?

11. सत्ताइस वर्ष पूर्व सरला मुद्गल (1995) के मामले में सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह द्वारा निम्न सवाल पूछा गया-

> 'हिन्दुओं के व्यक्तिगत कानून जो विवाह और उत्तराधिकार से संबंधित हैं, की भी उत्पत्ति उसी तरह धार्मिक रही है, जिस तरह मुसलमान और ईसाइयों में है। हिन्दुओं के साथ सिख, बौद्ध, जैन ने भी राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिए अपनी भावनाओं का त्याग किया है तो क्या दूसरे समुदाय के लोग ऐसा नहीं कर सकेंगे?'

सुप्रीम कोर्ट द्वारा पूछा गया उक्त सवाल आज भी अनुत्तरित है। उम्मीद करता हूं कि आप द्वारा उक्त सवाल का जवाब दिया जाएगा।

12. उन्नीस वर्ष पूर्व सुप्रीम कोर्ट ने जॉन वलामत्तम (2003) के मामले में कहा है कि विवाह, उत्तराधिकार जैसे धर्म-निरपेक्ष चरित्र वाले विषयों को संविधान के

अनुच्छेद 25 और 26 के अन्तर्गत गारण्टी किये गये अधिकार में नहीं शामिल किया जा सकता है। किन्तु सुप्रीम कोर्ट की इस व्यवस्था को आप द्वारा स्वीकार करने में क्यों समस्या है?

13. यदि कुरान और हदीश के प्रति आग्रह को लेकर आपकी ईमानदारी दृढ़ है, तो अपराध के संबंध में इनमें स्वीकार्य व्यवस्था को भारतीय मुसलमानों पर लागू करने की वकालत आप क्यों नहीं करते हैं?

आप जैसा व्यक्ति, मुस्लिम पर्सनल लॉ की पैरवी इसलिए नहीं करता है कि नमाज, हज, रोजा जैसे धार्मिक आस्था के विषय सुरक्षित रहें, बल्कि इसलिए करता है ताकि इसकी आड़ में एक मुस्लिम पति को चार-चार बीवी रखने की, 15 वर्ष उम्र की लड़कियों के साथ शादी करने की, मनमाना तरीके से तलाक कहने की छूट मिलता रहे और औरतों को विरासत में समान अधिकार न मिल पाये। ये व्यवस्थाएं न तो एक सभ्य समाज के नजरीये से स्वीकरणीय है और न ही भारत के धार्मिक ताना-बाना को सुरक्षित बनाये रखने के नजरीये से स्वीकरणीय है। किन्तु इसके बावजूद आप लोग इन्हें इसलिए बनाये रखना चाहते हैं, ताकि इस देश का ताना-बाना खराब हो जाय और ये सब धर्म की आड़ लेकर किया जाता है।

उक्त पन्द्रह सवालों का जवाब मिलने की अपेक्षा के साथ आपसे समान नागरिक संहिता पर संविधान का निर्देश मानने की अपील करता हूं, ताकि यह देश वास्तव में धर्म-निरपेक्ष देश बन सकें, जहां न केवल सभी भारतीयों की धार्मिक आजादी का अधिकार सुरक्षित रहे, बल्कि सिविल अधिकार एवं आपराधिक न्याय को लेकर धर्म के आधार पर कोई भेदभाव न हो।

2 जून, 2022

(अनूप देशबन्धु)
संयोजक
मिशन् अनुच्छेद 44 : एक राष्ट्र, एक सिविल कानून

(रजिस्टर्ड डाक एवं ईमेल के माध्यम से श्री मदनी के पते पर भेजकर पूछे गए उक्त सवाल का जवाब आज तक नहीं दिया गया है।)

यूनिफॉर्म सिविल कोड : मिथ्या धारणाएँ, चुनौतियाँ व समाधान

भारतीय सिविल संहिता के सिद्धान्त

अनुच्छेद 44 के क्रियान्वयन की दिशा में

अनूप बरनवाल

• बहुविवाह, तीन-तलाक, हलाला इत्यादि पर निष्पक्ष कानून • राष्ट्रीयता, राष्ट्रगान, राष्ट्रीय दिवस इत्यादि पर एकीकृत कानून • वक्फ की तरह हिन्दू-विन्यास के लिए एक कानून • दाम्पत्य-सम्पत्ति में पत्नी के समान अधिकार के सम्बन्ध में कानून • राजनीतिक पार्टियों में वंशवाद के खिलाफ कानून • आरक्षण पर 'वरीयता, निस्यन्दन और वर्ग-प्रोन्नति का नियम' • भौमिक साम्यता आधारित उत्तराधिकार का सिद्धान्त • आर्थिक अराजकता के खिलाफ 'गाँधीत्व-भीमत्व' का सिद्धान्त

समान नागरिक संहिता
(चुनौतियाँ और समाधान)
UNIFORM
CIVIL
CODE
अनूप बरनवाल

समान नागरिक संहिता :
चुनौतियाँ और समाधान
की
अनुक्रमणिका

भूमिका 19-26
1. संविधान सभा का विश्वास 27-37
2. न्यायपालिका की सक्रियता 38-63
शाहबानो बेगम (1985) का मामला . . . .
मिस जॉर्डान डेंगडेह (1985) का मामला . . . .
सरला मुद्गल (1995) का मामला . . . .
लिली थामस (2000) का मामला . . . .
जॉन वलामत्तम (2003) का मामला . . . .
शायरा बानो (2017) का मामला . . . .
जोस पॉलो कौटिन्हो (2019) का मामला . . . .
न्यायिक निर्णयों की समीक्षा . . . .
3. नीति-निर्माताओं की निराशाजनक स्थिति 64-82
शाहबानो पश्चात् भरण-पोषण कानून, 1986 . . .
भरण-पोषण कानून, 1986 की विसंगतियाँ . . .
शायरा बानो पश्चात् तीन तलाक कानून, 2017 . . .
तीन तलाक विधेयक, 2017 की कमियाँ . . . .
समान नागरिक संहिता पर निराशाजनक स्थिति . . .
4. विधि आयोग की नकारात्मकता 82-110
1. सर्वसहमति पर संस्थागत शुचिता के खिलाफ निष्कर्ष . .
2. संविधान सभा के अस्तित्व को असंयमित चुनौती . .
3. नीति-निदेशक सिद्धान्त के बारे में गलतफहमी . .
4. सुप्रीम कोर्ट के निर्णय पर अनुचित टिप्पणी . .
5. धार्मिक आजादी और समानता के अधिकार को लेकर ठहराव
6. समुदाय के अन्दर समानता को लेकर अनावश्यक अभ्यास .
7. व्यक्तिगत कानूनों की स्थिति को लेकर सन्देह . .
8. मुस्लिम कानून के संहिताकरण को लेकर दुविधा . .

9. हिन्दू अविभाजित परिवार पर अनुचित हमला . .
10. संविधान की छठी अनुसूची पर गैरजिम्मेदाराना कार्य . .
11. पृथक्करणीय दृष्टिकोण के खतरे को समझने में विफल
5. व्यक्तिगत कानून और धार्मिक आस्था 111-136
व्यक्तिगत कानून और मूल अधिकार . . . .
धार्मिक आस्था : धर्म लक्षित कसौटी बनाम राज्य लक्षित कसौटी
व्यक्ति लक्षित कसौटी ज्यादा श्रेयस्कर . . . .
धार्मिक आस्था पर संविधान सभा . . . .
व्यक्तिगत कानून और शरीया अदालत . . . .
6. समान नागरिक संहिता के वैश्विक दृष्टान्त 127-131
फ्रान्स सिविल संहिता . . . .
जर्मन सिविल संहिता . . . .
स्विस सिविल संहिता . . . .
टर्की सिविल संहिता . . . .
गोवा सिविल संहिता . . . .
7. मिथ्या धारणा और समाधान के रास्ते 132-142
'हिन्दू-संहिता बिल' की विफलता के बाद 'समान नागरिक संहिता' हाशिये पर . . . .
सिविल संहिता के सम्बन्ध में मिथ्या धारणा . .
'भारतीय सिविल संहिता' की अवधारणा . . . .
'भारतीय सिविल संहिता प्रारूप समिति' के गठन की आवश्यकता
8. 'भारतीय सिविल संहिता' के मार्गदर्शी सिद्धान्त 143-153
9. भाग I : राष्ट्रीयता सम्बन्धी कानून 154-193
राष्ट्रीय प्रतीक . . . .
अध्याय 1: राष्ट्रगान . . . . .
संविधानवादी राष्ट्रगान : भारत-राष्ट्र-हमारा
अध्याय 2: राष्ट्रभाषा . . . . .
संविधान सभा में राष्ट्रभाषा . . . .
साहित्य सम्मेलन का प्रस्ताव और द्वि-भारतीय-भाषा नीति .
अध्याय 3: राष्ट्रीय पर्व और राष्ट्रीय दिवस . . . .
1. देश का राष्ट्रीय पर्व — 'स्वराज पर्व'
2. 26 जनवरी गणतन्त्र दिवस के रूप में क्यों . .
3. प्रत्येक महीने एक राष्ट्रीय दिवस की अवधारणा
अध्याय 4: राष्ट्रीय ध्वज

राष्ट्रीय ध्वज: तिरंगा ध्वज या चक्रध्वज/चक्रपताका
अध्याय 5. राष्ट्रीय सम्मान . . . . . .
आजादी आन्दोलन के महानायकों के लिए 'भारत शिरोमणि'
अध्याय 6. राष्ट्रीय कैलेण्डर . . . . .
अध्याय 7. राज्य प्रतीक . .
अध्याय 8. नागरिकों के अधिवास और राष्ट्रपरक उपनाम .
भारतीय नागरिकता कार्ड . .
राष्ट्रीय सिविल-हैसियत ई-रजिस्टर . . .
10. भाग II : व्यक्ति सम्बन्धी कानून 194-206
अध्याय 9: व्यक्ति . . . . .
व्यक्ति के प्रकार . . . . .
अध्याय 10: न्यास . . . . .
अध्याय 11: विन्यास . . . . .
वक्फ के लिए एक कानून, मठ-मन्दिर
एवं चर्चों के लिए क्यों नहीं? . .
अध्याय 12: संस्था . . .
अध्याय 13: कम्पनी . . .
अध्याय 14: फर्म और भागीदारी . .
अध्याय 15: सिविल अधिकार एवं सिविल दायित्व .
सिविल अधिकार एवं सिविल दायित्व का निर्धारण .
11. भाग III : पारिवारिक कानून (Family Law) . . . 207-295
अध्याय 16: विवाह . . . . .
1. विवाह की प्रकृति . . . . .
2. विवाह के दोनों पक्षकारों की उम्र . . .
3. विवाह के लिए गवाह . . . .
4. निषिद्ध सम्बन्ध I. . . . .
तलाक की निषिद्धता और हलाला प्रथा . .
5. मेहर . . . . .
6. बहुविवाह अर्थात चार बीवी रखने की आजादी .
एक पति-एक पत्नी का सिद्धान्त और संयमित बहुविवाह
7. इद्दत या प्रतीक्षा-अवधि . . .
अध्याय 17: संयुक्त दाम्पत्य सम्पत्ति . . .
सापेक्षिक सहभागिता आधारित समानता का सिद्धान्त .
अध्याय 18: जाति निरपेक्ष विवाह की सुरक्षा . .

अध्याय 19: विवाह पश्चात् दायित्व एवं अधिकार .
अध्याय 20: शून्य एवं शून्यकरणीय विवाह . .
अध्याय 21: विवाह-विच्छेद एवं न्यायिक अलगाव .
1. न्यायालय के माध्यम से विवाह-विच्छेद और इसके आधार
2. आपसी सहमति से विवाह-विच्छेद . .
3. तीन-तलाक अर्थात् मौखिक विवाह-विच्छेद .
कुरान के अन्तर्गत मान्य तलाक . . .
तीन तलाक का उद्भव . . . .
भारत में तीन तलाक . . . .
शरीयत की वास्तविकता . . .
तीन तलाक के अन्य बचावों की वास्तविकता . .
तीन तलाक का समाधान . . . .
4. न्यायिक अलगाव . . . . . .
5. विवाह-विच्छेद का प्रभाव . . . .
अध्याय 22: जनकता और धर्मजत्व . . . .
अधर्मजत्व की स्थिति में बच्चे की अभिस्वीकृति :
मुस्लिम कानून बनाम साक्ष्य कानून . . .
अध्याय 23: गोद . . . . . .
हिन्दू कानून में पुरुष-प्रधानता के तत्त्व . . . .
अध्याय 24: अवयस्कता और संरक्षकत्व . . . .
संरक्षकत्व : हिन्दू कानून बनाम मुस्लिम कानून . .
अध्याय 25: भरण-पोषण . . . .
भरण-पोषण का अधिकार बनाम सम्पत्ति का अधिकार . .
अध्याय 26: उत्तराधिकार . . . . .
अध्याय 27: वसीयत और वसीयती उत्तराधिकार . .
वसीयत: 'भारतीय उत्तराधिकार कानून' बनाम 'मुस्लिम कानून'
अध्याय 28: निर्वसीयती उत्तराधिकार . . . .
सामान्य कानून बनाम हिन्दू कानून बनाम मुस्लिम कानून .
भौमिक साम्यता आधारित उत्तराधिकार का सिद्धान्त . .
अध्याय 29: बँटवारा . . . . . .
बँटवारा के सम्बन्ध में मौलिक कानून . . .
अध्याय 30: पारिवारिक समझौता . . . .
महिला अधिकारों के खिलाफ मौखिक पारिवारिक समझौता .
12. भाग IV : सम्पत्ति एवं दायित्व सम्बन्धी कानून 296-329

अध्याय 31: सम्पत्ति, स्वामित्व एवं कब्जा . . . .
अध्याय 32: संविदा एवं संविदात्मक दायित्व . . .
अध्याय 33: अपकृत्यात्मक दायित्व . . .
अध्याय 34: सम्पत्ति अन्तरण के सामान्य सिद्धान्त . .
1. 'चैप्टर 2' बनाम 'मुस्लिम कानून' बनाम 'हिन्दू कानून' .
2. शुफा का सिद्धान्त . . . . . .
अध्याय 35: बिक्री . . . . . .
अध्याय 36: विनिमय . . . . . .
अध्याय 37: बन्धक . . . . . .
अध्याय 38: भार . . . . . .
अध्याय 39: पट्टा . . . . . .
अध्याय 40: दान या हिबा . . . . . .
मर्ज-उल-मौत हिबा : मुस्लिम कानून बनाम सामान्य कानून .
मौखिक दान : मुस्लिम कानून बनाम सामान्य कानून . .
अध्याय 41: अनुयोज्य दावा का अन्तरण . . . .
अध्याय 42: प्रत्याभूति . . . . . .
अध्याय 43: उपनिधान . . . . . .
अध्याय 44: गिरवी . . . . . .
अध्याय 45: अभिकरण . . . . . .
अध्याय 46: बौद्धिक सम्पदा एवं बौद्धिक सम्पदा अधिकार . .
अध्याय 47: सुखाधिकार . . . . . .
अध्याय 48: अनुज्ञप्ति . . . . . .
अध्याय 49: बेनामी अन्तरण और
'गाँधीत्व-भीमत्व-भावेत्व' का सिद्धान्त
सीलिंग-कानून की विफलता से सबक लेने की आवश्यकता
बेनामी-कानून की अन्य कमियाँ . . .
आर्थिक-अराजकता की चिन्ताजनक स्थिति
स्वामित्व के सन्दर्भ में 'गाँधीत्व-भीमत्व-भावेत्व' का सिद्धान्त
कृषि का राष्ट्रीयकरण
बुनियादी शिक्षा का राष्ट्रीयकरण
12. उपसंहार 330-334